सत्य-शिव-सुन्दरः साहित्यः

पद्य-प्रसून

साहित्यरत्न

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय

"हरिऔध"

प्रकाशक—

हिन्दी-पुस्तक-भंडार

लहेरियासराय

१९८२

मूल्य १।)

विषय-सूची ।

पद्य-प्रसून

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

दो शब्द

आज हम हिन्दुओं की जैसी बुरी परिस्थिति है, वह किसी से छिपी नहीं। हम राजनैतिक लूले हैं और सामाजिक अन्धे; धार्मिक ढोंगी हैं और नैतिक कोढ़ी। हम दिन दिन गिरते जा रहे हैं—गिरते जा रहे हैं—गिरते जा रहे हैं। सर्वनाश का गर्त्त मुँह बाये खड़ा है—हमें निगलने को! हम उसी ओर बढ़ रहे हैं!!

हमारा उद्धार कौन करेगा? सिवाय उस पतितोद्धारक परमात्मा के और कौन सहायता कर सकता है। हाँ, एक व्यक्ति चाहें तो वे हमारे उद्धार में सहायक हो सकते हैं। वे हैं हमारे कवि।

कवियों की शक्ति अपार है। वे जो चाहें कर सकते हैं। वे सोये को जगा सकते हैं, जगे को खड़ा कर सकते हैं, खड़े को दौड़ा सकते हैं और उन्हें विजय के शिखर पर चढ़ा सकते हैं। ग्रीक-कवि सोलन, इंगलिश-कवि बायरन और हिन्दी-कवि भूषण हमारे कथन के प्रमाण हैं। आज यदि हिन्दी-कवि चेतें तो हिन्दुओं का उद्धार हुआ ही समझिये। क्यों नहीं, कवि ही ईश्वर है।

वर्तमान-कवि-सम्राट् पं० अयोध्या सिंह जी उपाध्याय ने हिन्दुओं के उद्धार के लिये लेखनी उठाई है-यह हम लोगों के लिये सौभाग्य की बात है। इस 'पद्य-प्रसून' की अधिकांश कवितायें हम हिन्दुओं की सामा-

जिक, धार्मिक, नैतिक आदि अवस्थाओं के शब्द-चित्र हैं। इनमें से कितनी कवितायें तो ऐसी हैं, जिनके पढ़ते ही एक ओर जहाँ अपनी बेबसी पर ग्लानि से धरा में धँसने की इच्छा होती है, वहाँ दूसरी ओर अपनी धर्म-विडम्बना देख नसों में बिजली दौड़ जाती है, भुजायें फड़कने लगती हैं। पाठक 'जीवन-स्रोत' की 'जीवन-मरण' शीर्षक कविता पढ़ देखें।

हमें आशा है, इस 'पद्य-प्रसून' के पूत पराग का पान कर पाठकों का मन-मिलिन्द मस्त होगा। 'पावन-प्रसंग' उनके हृदय में पावनता का संचार करेगा, 'जीवन-स्रोत' से उनके मुर्दे दिलों में संजीवन-स्रोत प्रवाहित होगा, 'सुशिक्षा-सोपान' उन्हें समुचित शिक्षा देगा, 'जीवनी-धारा' में वे अपनी लुप्त जीवन-धारा पायेंगे, 'जातीयता-ज्योति' उनमें जातीयता का प्रकाश फैलावेगी, 'विविध विषय' की साहित्यिक सामाजिक आदि विभिन्न विषयावली उनमें विविध-विषय-प्रियता का भव्य भाव भरेगी, 'दिव्य दोहे' उन्हें खड़ी बोली में ब्रजभाषा-सुलभ बारीकियाँ बतलावेंगे तथा 'बाल-बिलास' बालकों के आमोद-प्रमोद तथा क्रीड़ा-कोलाहल से उनके मानस को मुखरित करेगा। एवमस्तु।

हमारे लिये यह सौभाग्य की बात है कि अपने 'सुन्दर-साहित्य-माला' में सर्व प्रथम ऐसा सुन्दर 'प्रसून' गूंथने को मिला है। इसकेलिये कृपालु उपाध्याय जी को अनेकशः धन्यवाद।

—सम्पादक

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय।

(परिचय)

कवि-कर्म कठिन है। उस में सफलता प्राप्त करना और भी कठिन। कोई ईश्वर का कृपा-पात्र, कोई प्रकृति का आशीर्वाद-भाजन ही कविता में सफलता प्राप्त कर सकता है—सुकवि कहला सकता है।

उपाध्याय जी सुकवि हैं। वर्त्तमान काल के कवियों में आप का आसन अत्यन्त ऊंचा है। आप के सुप्रसिद्ध करुण-काव्य 'प्रिय-प्रवास' ने आप को महाकवि के प्रतिष्ठित पद पर अधिष्ठित किया है। प्रिय-प्रवास एक सुन्दर महा-काव्य ही नहीं है, एक युगान्तरकारी महाकाव्य भी उसे कह सकते हैं। तुकों की जबर्दस्त जंजीरों में जकड़ी हुई कविता-कामनी को आपने इस काव्य द्वारा सर्व प्रथम मुक्त करने की चेष्टा की है। ईश्वर उसे बन्धन-विमुक्त करें।

आप की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। छोटे छोटे तुच्छ विषयों से लेकर गहन गम्भीर विषयों पर भी आप ने सफलता पूर्वक लेखनी का संचालन किया है। जहाँ आपने 'अभेद

का भेद' 'वेद और धर्म' आदि अनेक गहन और दार्शनिक विषयों की मीमांसा अत्यन्त सरल और सुललित पद्यों द्वारा की है, वहाँ 'एक गुलाब का फूल' 'जुगनू' आदि तुच्छ विषयों पर भी, आप की प्रतिभा ने, अपूर्व कारीगरी दिखलाई है।

कवि का हृदय भावना-प्रधान होता है। यदि इस भावना में लोक-कल्याण का पुट भी मिला हो तो फिर क्या कहना ? यह सम्मिश्रण कवि को अमर बना देता है। गोस्वामी तुलसीदास आज इसी सम्मिश्रण के कारण हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि कहे जाते हैं। उपाध्याय जी में भी ईश्वर ने इन दोनों गुणों का समावेश किया है। आप की सभी कविताओं के अंतस्तल में लोक-कल्याण की भव्य भावना भरी पड़ी है। इस बात की यार्थता इस 'पद्य-प्रसून' के प्रत्येक पद्य से होगी।

उपाध्याय जी नाना प्रकार की भाषाओं के लिखने में सिद्धहस्त हैं। कठिन से कठिन और सरल से सरल पद्य आप आसानी से लिखते हैं। जहाँ आपने 'प्यारी न्यारी प्रभु-पद-रता कान्त-चिन्ता-उपेता' लिखा है, वहीं आपने 'देखो लड़को बन्दर आया, एक मदारी उसको लाया' भी लिखा है। भाषा तो आपकी अनुचरी सी है !

आप का छन्द-प्रयोग भी अद्भुत और अनुकरणीय है। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बंगला—जिस भाषा का जो कोई छन्द

आप को मधुर जँचा, उसे आप ने सादर अपनाया है। आप संस्कृत वृत्त द्रुतविलम्बित और मन्दाक्रान्ता लिखते हैं, उर्दू ढंग पर चौपदे और छपदे की रचना करते हैं, हिन्दी के छप्पै और दोहे बनाते हैं, तो बँगला वृत्त 'पयार' का भी प्रयोग करते हैं। और, सो भी, पूरी सफलता के साथ।

उपाध्याय जी पूरे शब्द-शिल्पी हैं। आपके एक एक शब्द चुने-चुनाये नपे-तुले होते हैं। जहां आपने केवल संस्कृत की ही सरिता बहाई है, वहां भी—उस सरिता-स्रोत पर भी—आपकी सुन्दर शब्द-तरंग-माला अठखेलियां करती दीख पड़ती है। 'बनलता' और 'माधुरी' नामकी कविता पाठक पढ़ देखें।

यहां एक बात याद आती है। इस 'पद्म-प्रसून' की छपाई के सम्बन्ध में इन पंक्तियों के लेखक को आपकी सेवा में बार बार जाने का मौका मिला है। 'दिव्य-दोहे' का विषय-विभाजन करना था। मैं जल्दी में था। मेरी शीघ्रता देख कर आपने मेरे अनुरोध पर शीघ्र ही विषय-विभाजन कर दिया। एक विषय का नाम रक्खा गया—पुष्प-क्यारी! किन्तु जब दूसरे दिन मैं पुनः पहुँचा तो आपने कहा—देखिये कल जो कापी आप ले गये थे उसका शीर्षक पुष्प-क्यारी न रख कर 'कुसुम-क्यारी' रखिये। दोनों के

भाव और अर्थ एक ही हैं, किन्तु पुष्प क्यारी और कुसुम-क्यारी के शब्द-संगठन में कितना अन्तर है, उसे कोई शब्द-शिल्पी ही समझ सकता है।

पहले कह चुका हूँ, आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। वह केवल पद्य तक ही निबद्ध नहीं। आपने गद्य लिखने में भी कमाल हासिल किया है। आपके ठेठ हिन्दी का ठाट और अधखिला फूल इसके प्रमाण हैं। ठेठ हिन्दी का ठाट सिविल सर्विस परीक्षा में कोर्स है।

आपकी साहित्य-सेवा पर मुग्ध होकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने आपको अपने चौदहवें अधिवेशन का सभापति बनाया था। भारतधर्म-महामण्डल ने भी आपको 'साहित्य-रत्न' की उपाधि देकर अपने को गौरवान्वित किया था।

उपाध्याय जी का जन्म बैशाख कृष्णा तृतीया सं० १९२२ विक्रमीय में हुआ था। आपके पिता का नाम है पं० भोला सिंह जी उपाध्याय। आपकी माता रुक्मिणी देवी एक विदुषी महिला थीं। पठन पाठन में आपके चाचा पं० ब्रह्मासिंह जी उपाध्याय से आपको पूरी सहायता मिली है। चरित-गठन, साहित्य-प्रेम आदि सभी सुगुणों के संकलन में पं०

ब्रह्मासिंह ने आपके लिये कुछ भी उठा न रखा। इन्हीं के सुप्रयत्नों के फल-स्वरूप हम उपाध्याय जी को आज इस रूप में पाते हैं—यदि ऐसा भी कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं। संस्कृत, उर्दू, फारसी, बँगला और पंजाबी भाषाओं की शिक्षा आपको प्राप्त है। शिक्षा प्राप्त कर कुछ दिनों तक आपने अध्यापक का काम किया था। फिर कानूनगोई की परीक्षा पास कर बहुत दिनों तक सदर कानूनगो की हैसियत से काम करते रहे। अब उस काम से पेन्सन लेकर हिन्दू विश्वविद्यालय में 'अवैतनिक रूप' से अध्यापक का काम कर रहे हैं।

आपको देख कर उस स्वर्णयुग के आदर्श ब्राह्मणों की याद आ जाती है। आपकी विद्वत्ता, सादगी, निर्लोभता, धर्मपरायणता आदि गुणों को देखकर ब्राह्मणत्व का एक स्पष्ट चित्र आँखों के निकट खिंच जाता है। आपकी विद्वत्ता अथाह है, अध्ययन-शीलता अनुकरणीय है, सादगी सराहनीय है, धार्मिकता धारणीय है और निस्पृहता अभिनन्दनीय है।

काव्य-चर्चा ही आपका व्यसन है। कविता ही आप की सहचरी है। इन पंक्तियों के लेखक को जब जब आप

के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है तब तब इसने आपको कविता ही के बीच में बैठे पाया है।

इनका उन्नत ललाट इनकी प्रतिभा का द्योतक है। गम्भीर मुख-मंडल सदाचारिता का सूचक है। एक दुबले-पतले शरीर में एक हृष्ट-पुष्ट आत्मा का विनोद-विलास इन्हीं को देखने पर दीख पड़ता है।

निर्लोभता की चर्चा पहले हो चुकी है। इस युग में—इस रुपये पैसे के युग में—आपने रुपयों को पैरों से ठुकराया है। आप अपनी कवित्व-शक्ति द्वारा बहुत कुछ उपार्जन कर सकते थे। किन्तु सरस्वती का क्रय-विक्रय करना आपको पसन्द नहीं। आपने अपनी कृतियों को, जिसने मांगा उसे ही, उदारता पूर्वक मुफ्त दे दिया है।

आप छोटे-बड़े सभी आगन्तुकों से बड़े प्रेम से, दिल खोल कर, मिलते हैं। अभिमान आप को छू नहीं गया है। आप का सीधापन देख कर दंग रह जाना पड़ता है। अतिथि-सत्कार शायद आप के ही पल्ले में पड़ा है।

ईश्वर आप के ही ऐसे सुकवि, सच्चरित्र, सदाशय और लोक हितैषी पुत्र भारत के घर घर में उत्पन्न करे।

—श्री रामवृक्षशर्मा बेनीपुरी।

पावन प्रसंग

पद्य-प्रसून

पावन प्रसंग

अभेद का भेद

दोहा

खोजे खोजी को मिला क्या हिन्दू क्या जैन ।
पत्ता पत्ता क्या हमें पता बताता है न ॥ १ ॥
रँगे रंग में जब रहे सकें रंग क्यों भूल ।
देख उसी की ही फबन फूल रहे हैं फूल ॥ २ ॥
क्या उसकी है सोहती नहीं नयन में सोत ।
क्या जग में है जग रही नहीं जागती जोत ॥ ३ ॥
पूजन जोग जिसे कहें पूजित-जन बन-दास ।
उसे नहीं जो पूजते तो क्यों पूजे आस ॥ ४ ॥
आव भगत उसका करें पूजें पाँव सचाव ।
सब से ऊंचा जो रहा रख कर ऊंचे भाव ॥ ५ ॥

बिना बीज क्यों बेलि हो बिना तिलों क्यों तेल।
किसी खेलाड़ी के बिना है न जगत का खेल॥ ६॥
क्या निर्गुण है? है भला किसको निर्गुण ज्ञान।
गुण वाले जो कर सकें करें सगुण गुण गान॥ ७॥
चित भीतर ही है नहीं जो चित रहे सचेत।
कला दिखाता क्या नहीं बाहर कलानिकेत॥ ८॥
विपुल बीज अंकुरित हो अंकुर सकल समेत।
हैं हरि पता बता रहे हरे भरे सब खेत॥ ९॥
जोत नहीं तम में मिली लाखों बार टटोल।
भेद भला कैसे खुले सके न आँखें खोल॥१०॥

प्रार्थना

हरि गीतिका

हे दीनबंधु दया-निकेतन विहग-केतन श्रीपते।
सब शोक-शमन त्रिताप-मोचन दुख-दमन जगतीपते।
भव-भीति-भंजन दुरित-गंजन अवनि-जन-रंजन विभो।
बहु-बार जन-हित-अवतरित ऐ अति-उदार-चरित प्रभो॥१॥
बहु-मूल्यता से वसन की भारत न कम आरत रहा।
रोमांच कर लखकर समर वह था चकित शंकित महा।

तब लौं दुरन्त-अकाल का जंजाल शिर पर आ पड़ा।
आ सामने विकराल बदन पसार काल हुआ खड़ा ॥२॥
इस बार जन-संहार जो है प्रति-दिवस प्रभु हो रहा।
अवलोक उसको नयन से किसके नहीं आँसू बहा।
बहु बंश ध्वंस हुए विपुल नर नगर के हैं मर रहे।
घर घर मचा कोहराम यम हैं ग्राम सूना कर रहे ॥३॥
कुम्हला गईं कलियाँ विपुल, बहु फूल असमय झड़ पड़े।
टूटे अनूठे-रत्न, लूटे मणि गये सुन्दर बड़े।
सर्वस्व कितनोंका छिना, बहुजन हृदय-धन हर गया।
दीपक बुझा बहु सदन का, बहु शीश मुकुट उतर गया ॥४॥
बहु भाग्य-मन्दिर का कलश-कमनीय निपतित हो गया।
अगणित अकिंचन जन परम आधार पारस खो गया।
टूटी कुटिल-विधि निठुर-कर से, बहु सुजन-गौरव-तुला।
बहु नयम के तारे छिने, बहु माँग का सेंदुर धुला ॥५॥
तब भी द्रवित नहिं तुम हुए, हैं वैसिही भौंहें तनी।
अवलोकिये भारत-अवनि को सदय हो त्रिभुवन धनी।
सह भार नहिं जिस का सके बहु-बार तनधर अवतरे।
उसकी बड़ी दुखमय दशा क्यों देख सकते हो हरे! ॥६॥
गज पशु रहा अवलोक ग्राह-ग्रसित उसे पहुँचे वहीं।
फिर कुरुज कवलित मनुज कुल पर किसलिये द्रवते नहीं।

जब एक याँ के गीध का दुख देख युग दृग भर गये ।
बहु लोग याँ के तब रहें दुख भोगते क्यों नित नये ॥७॥
जब व्याध का अपराध भी अपराध नहिं माना गया ।
तब तुच्छतर अपराधियों पर क्यों विशिख ताना गया ।
सुन कर पुकार गयंद की जब नयन से आँसू बहा ।
तब किस तरह नरपुंज हाहाकार जाता है सहा ॥८॥
बहु-व्याधि घन-माला घुमड़ भारत-गगन में है घिरी ।
पर प्रबल पवन-प्रवाह बन प्रभु-दृष्टि अब लौं नहिं फिरी।
भारत विपिन जनता लता है जल रही सुधि लीजिये ।
अनुतन सदयता सलिल से रुज दव शमन कर दीजिये ॥९॥
आकुल बने व्याकुल-नयन से विपुल-वारि विमोचते ।
नर नारि बालक-वृन्द हैं बदनारबिन्द विलोकते ।
वेनिशित विशिख समेटिये जिनसे विपुल मानव बिधे ।
सब त्राहि त्राहि पुकारते हैं पाहि पाहि कृपानिधे ॥१०॥

कमनीय कामनायें

छप्पै

वर-विवेक कर दान सकल-अविवेक निवारे ।
दूर करे अविचार सुचारु विचार प्रचारे ।

सहज-सुमति को बितर कुमति-कालिमा नसावे।
करे कुरुचि को विफल सुरुचि को सफल बनावे।
भावुक-मन-सुभवन में रहे प्रतिभा-प्रभा पसारती।
भव-अनुपम-भावों से भरित भारत-भूतल-भारती ॥ १ ॥

मन्दाक्रान्ता

प्यारी न्यारी प्रभु-पद-रता कान्त चिन्ता उपेता।
पाई जावे परम-मधुरा मानवी-प्रीति पूता।
सद्भावों से विलस सरसे सारभूता दिखावे।
होवे सारे रुचिर रस से सिक्त साहित्य सत्ता ॥ २ ॥

द्रुतविलम्बित

कुफल 'फूल' कदापि न दे सकें।
फल भले फल कामुक को मिलें।
विफलता विफला बनती रहे।
सफलता कृति को सफला करे ॥ ३ ॥
नयन हों हित अंजन से अँजे।
विनय हो मन मध्य विराजती।
रत रहें जन-रंजन में सदा।
रुचि रहे जगतीतल रंजिनी ॥ ४ ॥

मधुरिमा-मय हो बचनावली।
बहु मनोहर भाव समूह हों।
हृदय में बिलसे हितकारिता।
भरित मानवता मन में रहे॥ ५॥

आदर्श

कवित्त

लोक को रुलाता जो था रामने रुलाया उसे
हम खल खलता के खले हैं कलपते
काँपता भुवन का कँपाने वाला उन्हें देख
हम हैं बिलोक बल-वाले को बिलपते।
हरिऔध वे थे ताप-दाता ताप-दायकों के
हम नित नये ताप से हैं आप तपते।
रोम रोम में जो राम-काम रमता है नहीं
नाम के लिये तो राम नाम क्या हैं जपते॥ १॥
पाँव छू छू उनके तरे हैं छितितल पापी
और हम छाँह से अछूत की हैं डरते।
बड़े बड़े दानव दलित उनसे हैं हुए
दब दब दानवों से हम हैं उबरते।

हरिऔध वे हैं अकलंक सकलंक हो के
हम भाल-अंक को कलंक से हैं भरते।
जो न रमे राम में हैं कहें तो न राम राम
लीला में न लीन हैं तो लीला क्यों हैं करते ॥ २ ॥

हो के बनबासी गिरिबासी को तिलक सारा
साहस से पाया कपि-सेना का सहारा है।
बन खरदूषण तिमिर को प्रखर-रवि
अकले अनेक-दानवी-दल बिदारा है।
हरिऔध राम की ललाम-लीला भूले नहीं
सविधि उन्होंने बाँधी वारि-निधि-धारा है।
दो ही बाहु द्वारा बीस बाहु का उतारा मद
होते एक आनन दशानन को मारा है ॥ ३ ॥

पातक-निकंदन के पदकंज पूज पूज
कैसे पाँव पातक पगों के सहलावेंगे।
दानव-दलन से जो लगन रहेगी लगी
दानव दुरन्त कैसे दिल दहलावेंगे।
हरिऔध कैसे बहकावेंगे बहक बैरी
प्रभु के प्रलंब बाहु यदि बहलावेंगे।
एक रक्त होते हम होवेंगे विभक्त कैसे
भूरि भक्ति से जो रामभक्त कहलावेंगे ॥ ४ ॥

गुणगान

दोहा

गणपति गौरी-पति गिरा गोपति गुरु गोविन्द ।
गुण गावो वन्दन करो पावन पद अरविन्द ॥ १ ॥
देव भाव मन में भरे दल अदेव अहमेव ।
गिरि गुरुता से हैं अधिक गौरव में गुरुदेव ॥ २ ॥
पाप-पुंज को पीस गुरु त्रिविध ताप कर दूर ।
हैं भरते उर-भवन में भक्ति-भाव भरपूर ॥ ३ ॥
हर सारा अज्ञान-तम बन भवसागर-पोत ।
गुरु तज उर में ज्ञान को कौन जगावे जोत ॥ ४ ॥
जनरंजन होता नहीं कर-गंजन तम-मान ।
दृग-रुज-भंजन जो न गुरु करते अंजन दान ॥ ५ ॥
कौन बिना गुरु के हरे गौरव-जनित-गरूर ।
करे समल मानस विमल बने सूर को सूर ॥ ६ ॥
बिना खुली जन आँख को खोल न पाता आन ।
जानकार गुरु के बिना रहता जगत अजान ॥ ७ ॥
बाद क्यों न गुरु से करें चेले कलि अनुरूप ।
रीति न जानत विनय की हैं अविनय के रूप ॥ ८ ॥
गुरु-सेवा करते रहें गहें न उनकी भूल ।
जो न चढ़ावें फूल हम तो न उड़ावें धूल ॥ ९ ॥

होता है सिर को नवा नर जग में सिरमौर।
बनता है बन्दन किये बन्दनीय सब ठौर ॥१०॥

माता-पिता

दोहा

उसके ऐसा है नहीं अपनापन में आन।
पिता आपही अवनि में है अपना उपमान ॥ १ ॥
मिले न खोजे भी कहीं खोजा सकल जहान।
माता सी ममता-मयी पाता पिता समान ॥ २ ॥
जो न पालता पिता क्यों पलना सकता पाल।
माता के लालन बिना लाल न बनते लाल ॥ ३ ॥
कौन बरसता खेह पर निशि दिन मेंह-सनेह।
बिना पिता पालन किये पलती किस की देह ॥ ४ ॥
छाती से कढ़ता न क्यों तब बन पय की धार।
जब माता उर में उमग नहीं समाता प्यार ॥ ५ ॥
सुत पाता है पूत पद पाप पुंज को भूंज।
माता पद पंकज परस पिता कमल पग पूज ॥ ६ ॥
वे जन लोचन के लिये सके न बन शशि दूज।
पूजन जोग न जो बने माता के पग पूज ॥ ७ ॥

जो होते भू में नहीं पिता प्यार के भौन ।
ललक बिठाता पूत को नयन पलक पर कौन ॥ ८ ॥
जो होवे ममता मयी प्रीति पिता की मौन ।
प्यारा क्या सुत को कहे तो दृग तारा कौन ॥ ९ ॥
ललक ललक होता न जो पिता लालसा लीन ।
बनता सुत बरजोर तो कोर कलेजे की न ॥१०॥

हमारे वेद

छपदे

अभी नर जनम की बजी थी बधाई ।
रही आँख सुध बुध अभी खोल पाई ।
समझ बूझ थी जिन दिनों हाथ आई ।
रही जब उपज की झलक ही दिखाई ।
कहीं की अँधेरी न थी जब कि टूटी ।
न थी ज्ञान सूरज किरण जब कि फूटी ॥ १ ॥
तभी एक न्यारी कला रंगलाई ।
हमारे बड़ों के उरों में समाई ।
दिखा पंथ पारस बनी काम आई ।
फबी और फूली फली जगमगाई ।

उसी से हुआ सब जगत में उँजाला।
गया मूल सारे मतों का निकाला ॥ २ ॥
हमारे बड़े ए बड़ी सूझ वाले।
हुए हैं सभी बात ही में निराले।
उन्होंने सभी ढंग सुन्दर निकाले।
जगत में बिछे ज्ञान के बीज डाले।
उन्हीं का अछूता बचन लोक न्यारा।
गया वेद के नाम से है पुकारा ॥ ३ ॥
बिचारों भरे वेद ए हैं हमारे।
सराहे सभी भाव के हैं सहारे।
बड़े दिव्य हैं, हैं बड़े पूत, न्यारे।
मनों स्वर्ग से वे गये हैं उतारे।
उन्हीं से बही सब जगह ज्ञान-धारा।
उन्हीं ने धरा पर धरम को पसारा ॥ ४ ॥
उन्हीं ने भली नीति की नींव डाली।
खुली राह भल-मंसियों की निकाली।
उन्हीं ने नई पौध नर की सँभाली।
उन्हीं ने बनाया उसे बूझ वाली।
उन्हीं ने उसे पाठ ऐसा पढ़ाया।
कि है आज जिस से जगत जगमगाया ॥ ५ ॥

उन्हीं ने जगत–सभ्यता–जड़ जमाई।
उन्हीं ने भली चाल सब को सिखाई।
उन्हीं ने जुगुत यह अछूती बनाई।
कि आई समझ में भलाई बुराई।
बड़े काम की औ बड़ी ही अनूठी।
उन्हीं से मिली सिद्धियों की अँगूठी॥ ६॥

वेद और दूसरे पंथमत

छपदे

कहो सच किसी को कभी मत सताओ।
करो लोकहित प्रीति प्रभु से लगाओ।
भली चाल चल चित्त ऊंचा बनाओ।
बुरा मत करो पाप भी मत कमाओ।
बहुत बातें हैं इस तरह की सुनाती।
कि जो सार हैं सब मतों का कहाती॥ ७॥
उन्हें वेद ही ने जनम दे जिलाया।
उसी ने उन्हें सब मतों को चिन्हाया।
उसी ने उन्हें नर-उरों में लसाया।
उसी ने उन्हें प्यार-गजरा पिन्हाया।

समय-ओट में जब सभी मत रुके थे।
तभी मान का पान वे पा चुके थे ॥ ८ ॥
इसी वेद से जोत वह फूट पाई।
कि जो सब जगत के बहुत काम आई।
उसी से गईं बत्तियाँ वे जलाईं।
जिन्हों ने उँजेली उरों में उगाई।
उसी से दिये सब मतों के बले हैं।
कि जिन से अँधेरे घरों के टले हैं ॥ ९ ॥
चला कौन कब वेद से कर किनारा।
उसी से मिला खोजियों को सहारा।
किसी को बनाया किसी को सुधारा।
उसी ने किसी को दिया रंग न्यारा।
उसी से गई आँख में जोत आई।
बहुत से उरों की हुई दूर काई ॥१०॥

वेद सबके हैं

छपदे

चमकती हुई धूप किरणें सुनहली।
उगा चाँद औ चाँदनी यह रुपहली।

उन्हीं ने जगत-सभ्यता-जड़ जमाई।
उन्हीं ने भली चाल सब को सिखाई।
उन्हीं ने जुगुत यह अछूती बनाई।
कि आई समझ में भलाई बुराई।
बड़े काम की औ बड़ी ही अनूठी।
उन्हीं से मिली सिद्धियों की अँगूठी ॥ ६ ॥

वेद और दूसरे पंथमत

छपदे

कहो सच किसी को कभी मत सताओ।
करो लोकहित प्रीति प्रभु से लगाओ।
भली चाल चल चित्त ऊंचा बनाओ।
बुरा मत करो पाप भी मत कमाओ।
बहुत बातें हैं इस तरह की सुनातीं।
कि जो सार हैं सब मतों का कहातीं ॥ ७ ॥
उन्हें वेद ही ने जनम दे जिलाया।
उसी ने उन्हें सब मतों को चिन्हाया।
उसी ने उन्हें नर-उरों में लसाया।
उसी ने उन्हें प्यार-गजरा पिन्हाया।

समय-ओट में जब सभी मत रुके थे।
तभी मान का पान वे पा चुके थे ॥ ८ ॥

इसी वेद से जोत वह फूट पाई।
कि जो सब जगत के बहुत काम आई।
उसी से गईं बत्तियाँ वे जलाईं।
जिन्हों ने उँजेली उरों में उगाई।
उसी से दिये सब मतों के बले हैं।
कि जिन से अँधेरे घरों के टले हैं ॥ ९ ॥

चला कौन कब वेद से कर किनारा।
उसी से मिला खोजियों को सहारा।
किसी को बनाया किसी को सुधारा।
उसी ने किसी को दिया रंग न्यारा।
उसी से गई आँख में जोत आई।
बहुत से उरों की हुई दूर काई ॥ १० ॥

वेद सबके हैं

छपदे

चमकती हुई धूप किरणें सुनहली।
उगा चाँद औ चाँदनी यह रुपहली।

हवा मंद बहती धरा ठीक सँभली।
सभी पौध जिन से पली और बहली।
सकल लोक की जिस तरह हैं कहाती।
सभी की उसी भाँति हैं वेद थाती ॥११॥

सभी देश पर औ सभी जातियों पर।
सदा जल बहुत ही अनूठा बरस कर।
निराले अछूते भले भाव में भर।
बनाते उन्हें जिस तरह मेघ हैं तर।
उसी भाँति ए वेद प्यारों भरे हैं।
सकल-लोकहित के लिये अवतरे हैं ॥१२॥

बड़े काम की बात वे हैं बताते।
बहुत ही भली सीख वे हैं सिखाते।
सभी जाति से प्यार वे हैं जताते।
सभी देश से नेह वे हैं निभाते।
कहीं पर मचल वह कभी है न अड़ती।
भली आँख उनकी सभी पर है पड़ती ॥१३॥

सचाई फरेरा उन्हीं का उड़ाया।
नहीं किस जगह पर फहरता दिखाया।
बिगुल नेकियों का उन्हीं का बजाया।
नहीं गूंजता किस दिशा में सुनाया।

कली लोक-हित को उन्हीं की खिलाई।
सुवासित न कर कौन सा देश आई ॥१४॥

वेदों की उदारता

छपदे
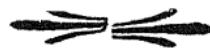
किसी पर कभी वे नहीं टूट पड़ते।
बखेड़ा बढ़ा कर नहीं वे झगड़ते।
नहीं वे उलझते नहीं वे अकड़ते।
कभी मुँह बनाकर नहीं वे बिगड़ते।
मुँदी आँख हैं प्यार से खोल जाते।
सदा निज सहज भाव वे हैं दिखाते ॥१५॥

दहकती हुई आग सूरज चमकता।
सुबह का अनोखा समय चाँद यकता।
हवा सनसनाती व बादल दलकता।
अनूठे सितारों भरा नभ दमकता।
उमड़ती सलिल धार औ धूप उजली।
खिली चाँदनी का समा कौंध बिजली ॥१६॥

सभी को सदा ही चकित हैं बनाती।
सहज ज्ञान की जोतियाँ हैं जगाती।

इन्हीं में बड़े ढंग से रंग लाती।
बड़ी ही अछूती कला है दिखाती।
इन्हीं के निराले विभव के सहारे।
किसी एक विभु के खुले रंग न्यारे॥१७॥

इसी से इन्हीं के सुयश को सुनाते।
इन्हीं के बड़ाई-भरे-गीत गाते।
इन्हीं के सराहे गुणों को गिनाते।
हमें वेद हैं भेद उसका बताते।
सभी में बसे औ लसे जो कि ऐसे।
दिये में दमक फूल में बास जैसे॥१८॥

अगर आँख खुल जाय उर की किसी के।
अगर हों लगे भाल पर भक्ति टीके।
भरम सब अगर दूर होजाँय जीके।
जिसे भाव मिल जाँय योगी यती के।
भले ही उसे सब जगह प्रभु दिखावे।
मगर दूसरा किस तरह सिद्धि पावे॥ १९ ॥

उसे खोजना ही पड़ेगा सहारा।
कि जिस से खुले नाथ का रंग न्यारा।
किया इसलिये ही न उनसे किनारा।
जिन्हें वेद ने ज्ञान-साधन विचारा।

उन्हों ने बहुत आँख ऊँची उठाई।
मगर सब कड़ी भी समझ के मिलाई ॥२०॥

वेद और धर्म

छपदे

धरम के जथे जो धरम के जथों पर।
करें वार निज करनियों को बिसरकर।
कसर से भरे हों रखें हित न जौ भर।
कलह आग में डालते ही रहें खर।
जगत के हितों का लहू यों बहावें।
बिगड़ धूल में सब भलाई मिलावें ॥२१॥

उन्हें फिर धरम के जथे कह जताना।
उमड़ते धुएँ को घटा है बनाना।
यही सोच है वेद ने यह बखाना।
बुरा सोचना है धरम का न बाना।
धरम पर धरम हैं न चोटें चलाते।
मिले, कींच में भी कमल हैं खिलाते ॥२२॥

बने पंथ मत जो धरम के सहारे।
कहीं हों कभी हो सकेंगे न न्यारे।

चमकते मिले जो कि गंगा किनारे।
खिले नील पर भी वही ज्ञान तारे।
दमकते वही टाइवर पर दिखाये।
मिसिसिपी किनारे वही जगमगाये॥२३॥

सदा इस लिये वेद हैं यह बताते।
धरम हैं धरम को न धक्के लगाते।
कभी वे नहीं टूटते हैं दिखाते।
जिन्हें हैं सहज नेह–नाते मिलाते।
नये ढोंग रचकर जगत-जाल में पड़।
धरम वे न हैं जो धरम की खनें जड़॥२४॥

सभी एक ही ढंग के हैं न होते।
सिरों में न हैं एक से ज्ञान-सोते।
उरों में सभी हैं न बर बीज बोते।
बहुत से मिले बैठ पानी बिलोते।
अगर एक थिर तो अथिर दूसरा है।
जगत भिन्न रुचि के नरों से भरा है॥२५॥

इसी से बहुत पंथ मत हैं दिखाते।
विचारादि भी अनगिनत हैं दिखाते।
विविध रीति में लोग रत हैं दिखाते।
बहुत भाँति के नेम ब्रत हैं दिखाते।

मगर छाप सब पर धरम की लगी है।
किसी एक प्रभु-जोत सब में जगी है ॥२६॥

नदी सब भले ही रखें ढंग न्यारा।
मगर है सबों में रमी नीर-धारा।
जगत के सकल पंथ मत का सितारा।
चमक है रहा पा धरम का सहारा।
इसे पेड़ उनको बतायेंगे थाले।
धरम दूध है पंथ मत हैं पियाले ॥२७॥

सचाई भरी बात यह बूझ वाली।
ढली प्रेम में रंगतों में निराली।
गई वेद की गोद में है सँभाली।
उसी ने उसे दी भली नीति ताली।
बहुत देश जिससे कि फल फूल पाया।
धरम मर्म वह वेद ही ने बताया ॥२८॥

पुष्पाञ्जलि

दोहा

राम चरित सरसिज मधुप पावन चरित नितान्त।
जय तुलसी कवि कुल तिलक कविता कामिनि कान्त ॥१॥

सुरसरि धारा सी सरस पूत परम रमणीय।
है तुलसी की कल्पना कल्पलता कमनीय ॥२॥
अमित मनोहरता मयी अनुपमता आवास।
है तुलसी रचना रुचिर बहु शुचि सुरुचि बिकास ॥३॥
सकल अलौकिकता सदन सुन्दर भाव उपेत।
है तुलसी की कान्त कृति निरुपम कला निकेत ॥४॥
जबलौं कवि कुल कल्पना करे कलित आलाप।
अवनि लसित तब लौं रहे तुलसी कीर्ति कलाप ॥५॥

सवैया

बन राम रसायन की रसिका
रसना रसिकों की हुई सफला।
अवगाहन मानस में कर के
जन मानस का मल सारा टला।
बने पावन भाव की भूमि भली
हुआ भावुक भावुकता का भला।
कविता कर के तुलसी न लसे
कविता लसी पा तुलसी की कला ॥ १ ॥

कवित्त

सुरसरि पावन सुहावन सलिल धारा
कमनीय कल्पना कलित कलसी की है।

रंजिनी कला कर अलौकिक कला समान
व्यंजना विभावरी विपुल बिलसी की है।
सुरुचि मयूरी की प्रमोदिनी घटा है मंजु
कौमुदी कुमोदिनी सुमति हुलसी की है।
बुध वृन्द विपुल बिकच अरबिन्द हेतु
सवितासी कविता कबिन्द तुलसी की है ॥१॥

उद्बोधन

मन्दाक्रान्ता

वेदों की है न वह महिमा धर्म है ध्वंस होता।
आचारों का निपतन हुआ लुप्त जातीयता है।
विप्रो खोलो नयन अब है आर्य्यता भी विपन्ना।
शीलों की है मलिन प्रभुता सभ्यता बंचिता है ॥ १ ॥
सच्चे भावों सहित जिन के राम ने पाँव पूजे।
पाई धोके चरण जिन के कृष्ण ने अग्र पूजा।
होते बाँछा बिबश इतने आज वे विप्र क्यों हैं।
जिज्ञासू हो निकट जिन के बुद्ध ने सिद्धि पाई ॥ २ ॥
जो धाता है निगम पथ का देवता है धरा का।
है विज्ञाता अमर पद का दिव्यता का विधाता।

क्यों तेजस्वी द्विज कुल वही ध्वान्त में मग्न सा है।
सारी भू है सप्रभ जिस के ज्ञान आलोक द्वारा ॥ ३ ॥
सेना से है सबल जिस की सत्य से पूत वाणी।
है अस्त्रों से अधिक जिस की मंत्रिता वारि धारा।
क्यों भीता औ विचलित वही विप्र की मण्डली है।
तेजः शाली परम जिस का दण्ड ही बज्र से है ॥ ४ ॥
हो जाते थे विनत जिन के सामने चक्रवर्त्ती।
सम्राटों का हृदय जिन के तेज से काँप जाता।
कैसे वेही द्विज कुजन की देखते बंक भ्रू हैं।
भूपालों का मुकुट जिन का पाँव छू पूत होता ॥ ५॥

जीवन-स्रोत

जीवन-स्रोत

विद्यालय

छप्पै

है विद्यालय वही जो परम मंगलमय हो।
बरविचार आकलित अलौकिक कीर्ति निलय हो।
भावुकता बर बदन सुबिकसित जिससे होवे।
जिसकी शुचिता प्रीति बेलि प्रति उर में बोवे।
पा अतुलित बल जिससे बने जाति बुद्धि अति बलवती।
बहु लोकोत्तर फल लाभ कर हो भारत भुवि फलवती ॥ १ ॥

होगा भवहित मूल भूत उस विद्यालय का।
गिरा देवि के बन्दनीयतम देवालय का।
उस में होगी जाति संगठन की शुभ पूजा।
होवेगा सहयोग मंत्र स्वर उस में गूंजा।
कटुता विरोध संकीर्णता कलह कुटिलता कुरुचि मल।
कर दूरित उस में बहेगी पूत नीति धारा प्रबल ॥ २ ॥

शुभ आशायें वहां समर्थित रंजित होंगी।
कलित कामनायें अनुमोदित व्यंजित होंगी।
वहाँ सरस जातीय तान रस बरसावेगी।
देश प्रीति की उमग राग रुचिकर गावेगी।
पूरित होगा गरिमा सहित वर व्यवहार सुवाद्य स्वर।
उस में वीणा सहकारिता बज कर देगी मुग्ध कर॥ ३॥

जिस में कलह विवाद वाद आमंत्रित होवे।
द्वेष जहाँ पर बीज भिन्नताओं का बोवे।
जहाँ सकल संकीर्ण भाव को होवे पूजा।
आकुल रहे विवेक जहाँ बन करके लूंजा।
उस विद्यालय के मध्य है कहाँ प्रथित महनीयता।
होती विलोप जिस में रहे रही सही जातीयता॥ ४॥

प्रायः है यह बात आज श्रुति गोचर होती।
नाश बीज जातीय सभायें हैं अब बोती।
प्रति दिन उन से संघ शक्ति है कुचली जाती।
उन से प्रश्रय है बिभिन्नता ही नित पाती।
अब अधःपात है हो रहा उनके द्वारा जाति का।
वे चाह रही हैं शान्ति फल पादप रोप अशान्ति का॥ ५॥

अपना अपना राग व अपनी अपनी डफली।
बहुत गा बजा चुके पर न अब भी सुधि सँभली।

ढाई चावल की खिचड़ी हम अलग पकाकर ।
दिन दिन हैं मिट रहे समय की ठोकर खाकर ।
एकता और निजता बिना काम चला है कब कहीं ।
वह जाति न जीती रह सकी जिस में जीवन ही नहीं ॥ ६ ॥

जाति जाति की सभा जातियों के विद्यालय ।
अति निन्दित हैं संघ शक्ति जो करें न संचय ।
उन विद्यालय और सभाओं से क्या होगा ।
डूब जाय जिस से हिन्दू गौरव का डोंगा ।
जो काम न आई जाति के वह कैसी हितकारिता ।
वह संस्था संस्था ही नहीं जहाँ न हो सहकारिता ॥ ७ ॥

जिस में केन्द्री करण नहीं वह सभा नहीं है ।
जो न तिमिर हर सके प्रभा वह प्रभा नहीं है ।
उस विद्यालय को विद्यालय कैसे मानें ।
जहाँ फूट औ कलह सुनावें अपनी तानें ।
मिल जाय धूल में वह सकल स्वार्थ निकेत स्वकीयता ।
जिस से बंचित बिचलित दलित हो हिन्दू जातीयता ॥ ८ ॥

यह विचार औ समय दशा पर डाल निगाहें ।
उन उदार सुजनों को कैसे नहीं सराहें ।
जिन लोगों ने सकल जाति को गले लगाया ।
विद्यालय को सदा अवारित द्वार बनाया ।

सब काल भाव ऐसे कलित ललित उदय होते रहें।
सब लोग मलिनता उरों की अमलिन बन धोते रहें॥ ९॥
प्रभो देश में जितने हिन्दू विद्यालय हों।
एक सूत्र में बँधे एकता निजता मय हों।
छात्र-वृन्द जातीय भाव से पूरित होवे।
आत्म त्यागरत रहे जाति हित सरबस खोवे।
ब्राह्मण छत्रिय वैश्य औ शूद्र भिन्नता तज मिलें।
बढ़े परस्पर प्यार औ कुम्हलाये मानस खिलें॥१०॥

जीवन मरण

कवित्त

पोर पोर में है भरी तोर मोर की ही बान
मुँह चोर बने आन बान छोड़ बैठी है।
कैसे भला बार बार मुँह की न खाते रहें
सारी मरदानगी ही मुँह मोड़ बैठी है।
हरिऔध कोई कस कमर सताता क्यों न
कायरता होड़ कर नाता जोड़ बैठी है।
छूट चलती है आँख दोनों ही गई है फूट
हिन्दुओं में फूट आज पाँव तोड़ बैठी है॥ १॥

बीता बीरतायें, बात उनकी बनातीं कैसे
धूल से औ तृण-तूल से जो गये बीते हैं।
उनकी रगों में भला बिजली भरेगा कौन
बात के कढ़े जो बार बार मुख सीते हैं।
हरिऔध हिन्दू कैसे हिन्दू का करेंगे हित
वे मुख अहिन्दुओं का देख देख जीते हैं।
लोहा कैसे लेते हाथ काँपता है लोहा छुये
आँखें कैसे लहू होतीं लहू घूँट पीते हैं ॥ २ ॥
धूल आँख में जो झोंकते हैं उन्हें बंधु मान
बँधे धाक-बंधनों को धूल में मिलाते हैं।
सच्चा मेल जोल मेल जोल चोचलों को मान
बिना माल मिले मोल अपना गँवाते हैं।
हरिऔध कैसे भला भूल हिन्दुओं की कहें
बन बन भोले भली भाँति छले जाते हैं।
बात खलती है खोलने को खोखलापन ही
आँख कैसे खुले आँख खोल ही न पाते हैं ॥ ३ ॥
काठ हो गये हैं काठ होने के कुपाठ पढ़
दिल वाले होते कढ़ा दिल का दिवाला है।
बस होते रहे बेबिसात बेबसी से बने
कस होते अकसों का बढ़ता कसाला है।

हरिऔध बल होते अबल बने ही रहे
बार बार बैरियों का होता बोलबाला है।
पाला कैसे मारें पाले पड़े हैं कचाइयों के
हिन्दुओं के लोहू पर पड़ गया पाला है ॥ ४ ॥

मन मरा तन में तनिक भी न ताब रही
धन का न ध्यान बाहु का बल न प्यारा है।
हँसी की न हया परवाह बेबसी की नहीं
अरमान हित का न मान का सहारा है।
हरिऔध ऐसी ही प्रतीति हो रही है आज
सुत रहा सुत औ न दारा रही दारा है।
वीरता रही न गई धीरता धरा में धँस
हिन्दुओं की रग में रही न रक्त धारा है ॥५॥

'दाब मानते हैं' यह भाव बार बार दब
दाँत तले दूब दाब दाब के दिखावेंगे।
आँख देखने की है न उन में तनिक ताब
बात यह आँख मूँद मूँद के बतावेंगे।
हरिऔध हिन्दुओं में हिम्मत रही ही नहीं
हार को सदा ही हार गले का बनावेंगे।
चोटी काट काट वे सचाई का सबूत देंगे
यूनिटी को पाँव चाट चाट के बचावेंगे ॥६॥

नवा नवा सिर को सहेंगे सिर पड़ी सारी
दाँत काढ़ काढ़ दाँत अपना तुड़ावेंगे।
रगड़ रगड़ नाक नाक कटवा हैं रहे
पकड़ पकड़ कान कान पकड़ावेंगे।
हरिऔध और कौन काम हिन्दुओं से होगा
मिल मिल गले गला अपना दबावेंगे।
पाँव पड़ पड़ मार पाँव में कुल्हाड़ा लेंगे
जोड़ जोड़ हाथ हाथ अपना कटावेंगे॥ ७॥

कागज के फूल हैं गलेंगे बारि बूँद पड़े
पत्ते हैं पवन लगे काँपते दिखावेंगे।
वे तो हैं बलूले बात कहते बिलोप होंगे
ओले हैं अवनि तल परसे बिलावेंगे।
ओस की हैं बूँदें लोप होवेंगे किरण छूते
कुसुम हैं धूप देखते ही कुम्हलावेंगे।
कैसे भला हिन्दू फूंक फूंक के न पाँव रखें
भूआ हैं बिचारे फूंक से ही उड़ जावेंगे॥ ८॥

कान होते बहरे बने हैं अंधे आँख होते
बाचा चारु होते मूक रहना बिचारा है।
कर होते लुंज हैं औ पंगु हैं सुपग होते
बलवान होते कहाँ बल का सहारा है।

हरिऔध दुखित महा है देख देख दशा
तेज होते परम तरणि बना तारा है।
तन होते तन बिन गये हैं ए अतन बन
हिन्दुओं के तन की निराली रक्त धारा है ॥९॥

चूक जो हुई सो हुई चूकते सदा क्यों रहें
चतुर हितू के मिले चौंक अब चेते हैं।
भ्रम की भयानक भँवर में पड़ी क्यों रहे
सँभल सँभल जाति हित नाव खेते हैं।
हरिऔध कैसे भला भूल हिन्दुओं से होगी
साथ साथ वाले का वे साथ रह देते हैं।
गाली खा खा मंजु मुख लाली है ललाम होती
लात खा खा लात को ललक चूम लेते हैं ॥१०॥

काँटे जैसे लघु चुभते हैं पड़े पाँव तले
पीटे धूल पड़ पड़ दगों में दुख देती है।
कौड़ी की सी बड़ी तुच्छ टीड़ी दल बाँध बाँध
दल देती बड़े बड़े दलपति की खेती है।
हरिऔध हिन्दू जाति में अब कहाँ है जान
चोट पर चोट खा खा कर भी न चेती है।
छेड़े दबे छोटे छोटे कीट भी न छोड़ते हैं
चोट करते हैं चींटे चींटी काट लेती है ॥११॥

लट लट बार बार लोट लोट जाते जो न
कैसे तो हमारी ललनायें कोई लूटता।
फटे जो न होते दिल फूटा जो न भाग होता
कैसे लगातार तो हमारा सिर फूटता।
हरिऔध कटुता न जाति में जो फैली होती
कैसे कूटनीतिवाला कूद कूद कूटता।
टूट हो रही है टूट मन्दिर अनेकों गये
मूर्ति टूटती है, है कलेजा कहाँ टूटता ॥१२॥

आन बान वाले बात अपनी बना हैं रहे
आज भी हमारी आन लम्बी तान सोती है।
कान पर जूंओ नहीं रेंगती किसी के कभी
बद कर बदों की बदी विष बीज बोती है।
हरिऔध हाथ मलते भी बनता है नहीं
बार बार चूर चूर होता मान-मोती है।
ललनायें छिनीं किन्तु खौलता कहाँ है लहू
लाल लुटते हैं आँख लाल भी न होती है ॥१३॥

रोते रोते रातें हैं बिताते बहुतेरे लोग
रेते जा रहे हैं गले घर होते रीते हैं।
आग हैं लगाते, हैं जलाते बार बार जल,
चैन लेने देते नहीं पातकी पलीते हैं।

हरिऔध हिन्दू मेमने हैं बने चेते नहीं
चोट पहुँचाते लहू चाट वाले चीते हैं।
पटु हो रहे हैं पीटने में पीट पीट पापी
एक कोट से भी बीस कोटि गये बीते हैं ॥१४॥

माल पर हाथ मार मार मालामाल बनें
कर के कपाल क्रिया भरें किलकारियाँ।
'खल कर लहू' हाथ अपना लहू से भरें
तन के छुतों से छूटें लहू पिचकारियाँ।
धज्जियाँ उड़ाई जाँय भोलेभाले बालकों की
धूल में मिलाई जाँय फूल जैसी नारियाँ।
आग तो कलेजे में लगी ही नहीं हिन्दुओं के
कैसे भला आँख से कढ़ेंगी चिनगारियाँ ॥१५॥

झोपड़ी किसी की फुँकती है तो भले ही फुँके
उसे क्या जो फूंक फूंक देता पर-टट्टी है।
कैसे भला लोक-लाभ-लालसा लुभाये उसे
जिसने कि लूटपाट ही की पढ़ी पट्टी है।
हरिऔध मानवता ममता न होगी उसे
पामरता प्रीति घटे होती जिसे घट्टी है।
पड़ के खटाई में न खट्टी मीठी जान सके
आज भी हमारी आँख की न खुली पट्टी है ॥१६॥

नानी मर जाती है कहानी बीरता की सुने
काँप उठते हैं नेक नाम सुने नेजे का।
बुरी बुरी भावना है पुजती भवानी बनी
भय से भरा ही रहता है भाग भेजे का।
हरिऔध हिन्दुओं का ह्रास होगा कैसे नहीं
फल मिलता है उन्हें हीनता अँगेजे का।
जान होते बिना जान वाला कौन दूसरा है
कौन है कलेजा होते बना बेकलेजे का॥१७॥

कीट कहते हैं ए बनेंगे कीट पावस के
लत्ते कहते हैं लत्ते इनके उड़ावेंगे।
दूब कहती है दूब दाबेंगे ए दाँतों तले
तृण कहते हैं इन्हें तृण सा बनावेंगे।
हरिऔध क्या सुन रहे हैं? ए हैं कैसी बातें?
कान खोल हिन्दू क्या इन्हें न सुन पावेंगे।
तूल कहती है ए उड़ेंगे तूल-पुंज सम
धूल कहती है धूल में ए मिल जावेंगे॥१८॥

कैसे खान पान के बखेड़े खड़े होंगे नहीं
कैसे छूत छात को अछूते बन खोवेंगे।
कैसे पंथ मत के प्रपंच में पड़ेंगे नहीं
कैसे भेद भाव काँटे पंथ में न बोवेंगे।

हरिऔध कैसे पेचपाच न भरेंगे पेच
कैसे जाति पाँति के कलंक-पंक धोवेंगे।
घर के अनेक रूप रोकती अनेकता है
एका कैसे होगा कैसे हिन्दू एक होवेंगे ॥१९॥

दुख हुए दूने हुए सुन्दर सदन सूने
ध्वंस के नमूने बने मन्दिर दिखाते हैं।
दिल में पड़े हैं छाले जीवन के लाले पड़े
पामर के पाले पड़े सुख को ललाते हैं।
हरिऔध हिन्दुओं की बुरी लतें छूटी नहीं
माल खो खो लोने लाल ललना गँवाते हैं।
तलवे सहलाते पिटते हैं बच पाते नहीं
सह सह लातें रसातल चले जाते हैं ॥२०॥

कटेंगे पिटेंगे नोचते हैं जो नुचेंगे आप
कब तक हिन्दुओं को नोच नोच खावेंगे।
पच न सकेगा पेट मार के मरेंगे क्यों न
पामर परम कैसे पाहन पचावेंगे।
हरिऔध धर्म-बीर धर्म की रखेंगे धाक
ऊधमी अधम कैसे ऊधम मचावेंगे।
पोटी दूह लेवेंगे चपेटेंगे लँगोटी बाँध
बोटी बोटी कटे लाज चोटी की बचावेंगे ॥२१॥

घातकी जो पातक पयोनिधि समान होंगे
कौतुक तो कुँभ-योनि कासा दिखलावेंगे।
एक मुख से ही पंच मुख का करेंगे काम
दोही बाहु मेरे चार बाहु कहलावेंगे।
अधम अधमता चलेगी हरिऔध कैसे
दो ही दृग सहस-नयन पद पावेंगे।
लोम लोम लोमश लौं अजर अमर होंगे
सारे रक्त-विन्दु रक्त-बीज बन जावेंगे ॥२२॥
बदरंग उनको अनेकता करेगी कैसे
एकता की रंगतों में यदि सन जावेंगे।
हाथ लेंगे आयुध विरोध प्रतिकारक तो
बैरी-बैर-बीरुध के मूल खन जावेंगे।
हरिऔध हिन्दू बातें अपनी बनायेंगे तो
उन्नति विधान के वितान तन जावेंगे।
चार चाँद जाति हित चाव में लगा देंगे तो
चन्द जयचन्द भोर-चन्द बन जावेंगे ॥२३॥
जगेंगे उठेंगे औ गिरावेंगे गरूरियों को
गिरि को करेंगे चूर बज्र बन जावेंगे।
परम प्रपंचियों का कदन प्रपंच कर
भर भर पेंच बाई पूच की पचावेंगे।

हरिऔध हिन्दू घर घोर धावमान होंगे
अंधाधुंध बंधुओं को धरा में धँसावेंगे।
धूम से दलेंगे धमाचौकड़ी मचेगी कैसे
बड़े बड़े ऊधमी को धूल में मिलावेंगे ॥२४॥
प्रेम के निकेतनों के प्रेमिक परम होंगे
प्यार भरा प्याला प्यार वाले को पिलावेंगे।
हिंसक की हिंसा को कहेंगे कभी हिंसा नहीं
मान वे अहिंसकों को दिल से दिलावेंगे।
हरिऔध मानवता मोल को अमोल मान
अमिल मनों को मेल-जोल से मिलावेंगे।
जीवित रहेंगे मर जाति के हितों के लिये
जीवन दे जीवन-विहीन को जिलावेंगे ॥२५॥

परिवर्तन

छप्पै

तिमिर तिरोहित हुए तिमिर-हर है दिखलाता।
गत विभावरी हुए विभा बासर है पाता।
टले मलिनता सकल दिशा है अमलिन होती।
भगे तमीचर, नीरवता तमचुर-ध्वनि खोती।

है वहाँ रुचिरता थीं जहाँ धारायें अरुचिर बहीं।
कब परिवर्तन-मय जगत में परिवर्तन होता नहीं ॥ १ ॥

परिवर्तन है प्रकृति नियम का नियमन कारक।
प्रवहमान जीवन प्रवाह का पथ विस्तारक।
परिवर्तन के समय जो न परिवर्तित होगा।
साथ रहेगा अहित, हित न उसका हित होगा।

यदि शिशिर काल में तरु दुसह दल निपात सहते नहीं।
तो पा, नव पल्लव फूल फल समुत्फुल्ल रहते नहीं ॥ २ ॥

किन्तु समय अनुकूल नहिं हुए परिवर्तित हम।
भूल रहे हैं अधमाधम को समझ समुत्तम।
अति असरल है सरल से सरल गति कहलाती।
सुधा गरल को परम तरल मति है बतलाती।

हैं बिकच कुसुम जो काम के अब न काम के वे रहे।
हैं झोंके तपऋतु पवन के मलय मरुत जाते कहे ॥ ३ ॥

जो कुचाल हैं हमें चाव की बात बताती।
जो रस्में हैं हमें रसातल को ले जाती।
जो कुरीति है प्रीति प्रतीति सुनीति निपाती।
जो पद्धति है बिपद बीज बो बिपद बुलाती।

छटपटा छटपटा आज भी हम उस से छूटे नहीं।
हैं जिन कुबंधनों में बँधे वे बंधन टूटे नहीं ॥ ४ ॥

जीवन के सर्वस्व जाति नयनों के तारे।
भोले भाले भले बहुत से बंधु हमारे।
तज निज पावन अंक अंक में पर के बैठे।
निज दल का कर दलन और के दल में पैठे।
पर खुल खुल कर भी अध खुले लोचन खुल पाये नहीं।
धुल धुल कर भी धब्बे बुरे अब तक धुल पाये नहीं ॥ ५ ॥

कहीं लाल हैं ललक ललक कर लूटे जाते।
ललनाओं पर कहीं लोग हैं दाँत लगाते।
कहीं आँख की पुतली पर लगते हैं फेरे।
कहीं कलेजे काढ़ लिये जाते हैं मेरे।
गिरते गिरते इतना गिरे गुरुतायें सारी गिरीं।
पर फिर फिर कर के आज भी आँखें हैं न इधर फिरीं ॥ ६ ॥

जिस अछूत को छूतछात में पड़ नहिं छूते।
उसके छय हो गये रहेंगे हम न अछूते।
छिति तल से जो छूत हमारा नाम मिटावे।
चहिये उसकी छाँह भी न हम से छू जावे।
पर छुटकारा अब भी नहीं छूतछात से मिल सका।
छल का प्याला है छलकता छिल न हमारा दिल सका ॥ ७ ॥

केवल व्यय से धन कुबेर निर्धन होवेगा।
केवल बरसे बारि-राशि बारिद खोवेगा।

बिना जलागम जल सूखे सूखेगा सागर।
वंशवृद्धि के बिना अवनि होगी बिरहित नर।
वह जाति ध्वंस हो जायगी जो दिन दिन है छीजती।
होगा न जाति का हित बिना बने जाति हित ब्रत ब्रती ॥ ८ ॥

हम में परिवर्तन पर हैं परिवर्तन होते।
पर वे हैं जातीय भाव गौरव को खोते।
वह परिवर्तन जो कि जाति का पतन निवारे।
हुआ नयन गोचर न नयन बहुबार पसारे।
मिल सकी न वह जीवन जड़ी जो सजीव हम को करे।
वह ज्योति नहीं अबतक जगी जो जग मानस तम हरे ॥ ९ ॥

मुनिजन बचन महान कल्पतरु से हैं कामद।
उनके विविध विधान हैं फलद मानद ज्ञानद।
वसुधा ममतामयी सुधासी जीवन-दाता।
उनकी परम उदार उक्ति भव शान्ति विधाता।
बहु अशुचि रीति से अरुचि से अरुचिर रुचि से है दलित।
मंदार मंजुमाला नहीं मानी जाती परिमलित ॥१०॥

विविध वेद विधि क्या न बहु अविधि के हैं बाधक।
सकल सिद्धि की क्या न साधनायें हैं साधक।
क्या जन जन में रमा नहीं है राम हमारा।
क्या विवेक बलबुद्धि का न है हमें सहारा।

क्या पावन मंत्रों में नहीं बहु पावनता है भरी।
क्या भारत में बिलसित नहीं पतितपावनी सुरसरी ॥११॥

यदि है जी में चाह जगत में जीयें जागें।
तो हो जावें सजग शिथिलता जड़ता त्यागें।
मनोमलिनता आतुरता कातरता छोड़ें।
मुँह न एकता समता जन-ममता से मोड़ें।
बहुविघ्न-मेरु-कुल को करें चूर चूर बर-बज्र बन।
हो त्रि-नयन नयन दहन करें सकल अमंगल अतनतन ॥१२॥

प्रभो जगत जीवन विधायिनी जाति-हमारी।
हो मर्य्यादित बच्चा बच्चा मर्य्यादा सारी।
सकल सफलता लहे विफलता मुख न बिलोके।
दिन दिन सब अवलोकनीय सुख को अवलोके।
जब लौं नभतल के अंक में यह भारत भूतल पले।
तब लौं कर कीर्ति कुसुम चयन फबे फैल फूले फले ॥१३॥

हमें चाहिये

रोला

कपड़े रँग कर जो न कपट का जाल बिछावे।
तन पर जो न विभूति पेट के लिये लगावे॥

हमें चाहिये सच्चे जी वाला वह साधू।
जाति देश जग हित कर जो निज जन्म बनावे ॥ १ ॥
देश काल को देख चले निजता नहिं खोवे।
सार वस्तु को कभी पखंडों में न डुबोवे ॥
हमें चाहिये समझ बूझ वाला वह पंडित।
आँखें ऊँची रखे कूपमंडूक न होवे ॥ २ ॥
आँखों को दे खोल, भरम का परदा टाले।
जी का सारा मैल कान को फूँक निकाले ॥
गुरू चाहिये हमें ठीक पारस के ऐसा।
जो लोहे को कसर मिटा सोना कर डाले ॥ ३ ॥
टके के लिये धूल में न निज मान मिलावे।
लोभ लहर में भूल न सुरुचि सुरीति बहावे ॥
हमें चाहिये सरल सुबोध पुरोहित ऐसा।
जो घर घर में सकल सुखों की सोत लसावे ॥ ४ ॥
करे आप भी वही और को जो सिखलावे।
सधे सराहे सार बचन निज मुख पर लावे ॥
हमें चाहिये ज्ञानमान उपदेशक ऐसा।
जो तमपूरित उरों बीच बर जोत जगावे ॥ ५ ॥
जो हो राजा और प्रजा दोनों का प्यारा।
जिसका बीते देश-प्रेम में जीवन सारा ॥

देश-हितैषी हमें चाहिये अनुपम ऐसा।
बहे देशहित की जिसकी नस नस में धारा ॥ ६ ॥
जिसे पराई रहन सहन की लौ न लगी हो।
जिसकी मति सब दिन निजता की रही सगी हो ॥
हमें चाहिये परम सुजान सुधारक ऐसा।
जिसकी रुचि जातीय रंग ही बीच रँगी हो ॥ ७ ॥
जिसके हों ऊँचे बिचार पक्के मनसूबे।
जो होवे गंभीर भीड़ के पड़े न ऊबे ॥
हमें चाहिये आत्म-त्याग-रत ऐसा नेता।
रहें जाति-हित में जिसके रोयें तक डूबे ॥ ८ ॥
बोल बोल कर बचन अमोल उमंग बढ़ावे।
जन-समूह को उन्नति-पथ पर सँभल चलावे ॥
इस प्रकार का हमें चाहिये चतुर प्रचारक।
जो अचेत हो गई जाति को सजग बनावे ॥ ९ ॥
देख सभा का रंग, ढंग से काम चलावे।
पचड़ों में पड़ धूल में न सिद्धान्त मिलावे ॥
हमें चाहिये नीति-निधान सभापति ऐसा।
जो सब उलझी हुई गुत्थियों को सुलझावे ॥ १० ॥
एँच पेच में कभी सचाई को न फँसावे।
लम्बी चौड़ी बात बनाना जिसे न आवे ॥

हमें बात का धनी चाहिये कोई ऐसा।
जो कुछ मुँह से कहे वही करके दिखलावे ॥११॥
किसे असंभव कहते हैं यह समझ न पावे।
देख उलझनों को चितवन पर मैल न लावे ॥
हमें चाहिये धुन का पक्का ऐसा प्राणी।
जो कर डाले उसे कि जिसमें हाथ लगावे ॥१२॥
कोई जिसे टटोल न ले आँखों के सेवे।
जिसके मन का भाव न मुखड़ा बतला देवे ॥
हमें चाहिये मनुज पेट का गहरा ऐसा।
जिसके जी की बात जान तन-लोम न लेवे ॥१३॥
जिसके धन से खुलें समुन्नति की सब राहें।
हो जावें वे काम विबुध जन जिन्हें सराहें ॥
हमें चाहिये सुजन गाँठ का पूरा ऐसा।
जो पूरी कर सके जाति की समुचित चाहें ॥१४॥
ऊँच नीच का भेद त्याग सब को हित माने।
चींटी पर भी कभी न अपनी भौंहें ताने ॥
हमें चाहिये मानव ऊँचे जी का ऐसा।
अपने जी सा सभी जीव का जी जो जाने ॥१५॥

हमें नहीं चाहिये

रोला

आप रहे कोरा शरीर के बसन रँगावे।
घर तज कर के घरबारी से भी बढ़ जावे।
इस प्रकार का नहीं चाहिये हम को साधू।
मन तो मूंड़ न सके मूंड को दौड़ मुड़ावे ॥ १ ॥

मन का मोह न हरे, राल धन पर टपकावे।
मुक्ति बहाने भूल भुलैयां बीच फँसावे।
हमें चाहिये गुरू नहीं ऐसा अविवेकी।
जो न लोक का रखे न तो परलोक बनावे ॥ २ ॥

बूझ न पावे धर्म-मर्म बकवाद मचावे।
सार वस्तु को बचन चातुरी में उलझावे।
इस प्रकार का नहीं चाहियै हम को पंडित।
जो गौरव के लिये शास्त्र का गला दबावे ॥ ३ ॥

न तो पढ़ा हो न तो कभी कुछ कर्म करावे।
कर सेवायें किसी भाँति जीविका चलावे।
कभी चाहिये नहीं पुरोहित हम को ऐसा।
पूरा क्या, जो हित न अधूरा भी कर पावे ॥ ४ ॥

सीधे सादे वेद बचन को खींचे ताने।
अपने मन अनुसार शास्त्र सिद्धान्त बखाने।

हमें चाहिये नहीं कभी ऐसा उपदेशक।
जो न धर्म की अति उदार गति को पहचाने ॥ ५ ॥
बके बहुत, थोथी बातें कह, मूंछें टेवे।
निज समाज का रहा सहा गौरव हर लेवे।
इस प्रकार का हमें चाहिये नहीं प्रचारक।
कलह फूट का बीज जाति में जो बो देवे ॥ ६ ॥
चाहे सुनियम तोड़ ढोंग रचना मनमाने।
मतलब गाँठा करे समाज-सुधार बहाने।
नहीं चाहिये कभी सुधारक हम को ऐसा।
ठीक ठीक जो नहीं जाति नाड़ी गति जाने ॥ ७ ॥
घी मिलने की चाह रखे औ वारि बिलोवे।
जिसकी नीची आँख जाति का गौरव खोवे।
इस प्रकार का नहीं चाहिये हम को नेता।
जो हो रुचि का दास नाम का भूखा होवे ॥ ८ ॥
तह तक जिस की आँख समय पर पहुँच न पावे।
थोड़ा सा कुछ करे बहुत सा ढोल बजावे।
देश-हितैषी नहीं चाहिये हम को ऐसा।
मरे नाम के लिये देश के काम न आवे ॥ ९ ॥
निज पद गौरव साथ सभा को जो न सँभाले।
सभी सुलझती हुई बात को जो उलझाले।

इस प्रकार का नहीं चाहिये हमें सभापति।
जिसे जो चहे वही मोम की नाक बना ले ॥१०॥

—❀—

क्या होगा

द्विपद

बहँक कर चाल उलटी चल कहो तो काम क्या होगा।
बड़ों का मुँह चिढ़ा करके बता दो नाम क्या होगा ॥ १ ॥
बही जी में नहीं जो बेकसों के प्यार की धारा।
बता दो तो वदन चिकना व गोरा चाम क्या होगा ॥ २ ॥
दुखी बेवों यतीमों की कभी सुध जो नहीं ली तो।
जमा किस काम आवेगी व यह धन धाम क्या होगा ॥ ३ ॥
अगर जी से लिपट करके नहीं बिगड़ी बना पाते।
बहाकर आँख से आँसू कलेजा थाम क्या होगा ॥ ४ ॥
बकें तो हम बहुत, पर कर दिखावें कुछ न भूले भी।
समझ लो तो हमारी बात का फिर दाम क्या होगा ॥ ५ ॥
लगीं ठेसें कलेजे पर बड़ों के जिन कपूतों से।
भला उन से बढ़ा कोई कहीं बदनाम क्या होगा ॥ ६ ॥
करेंगे क्या उसे लेकर, नहीं कुछ आन है जिस में।
बता दो यह हमें गूदे बिना बादाम क्या होगा ॥ ७ ॥

बनें सब दोस्त बेगाने सगों की आँख फिर जावे ।
किसी के वास्ते इससे बुरा अय्याम क्या होगा ॥ ८ ॥
दवायें भी नहीं जिसके गले से हैं उतर सकतीं ।
भला सोचो तुम्हीं बीमार वह आराम क्या होगा ॥ ९ ॥
न कुछ भी तेज हो जिस में बनेगा करतबी वह क्या ।
न हो जिस में कि तीखापन भला वह घाम क्या होगा ॥१०॥
डुबा कर जाति का बेड़ा जो हैं कुछ रोटियां पाते ।
समझ पड़ता नहीं अंजाम उनका राम क्या होगा ॥११॥

एक उकताया

द्विपद

क्या कहें कुछ कहा नहीं जाता ।
बिन कहे भी रहा नहीं जाता ॥१॥
बे तरह दुख रहा कलेजा है ।
दर्द अब तो सहा नहीं जाता ॥२॥
इन झड़ी बाँध कर बरस जाते ।
आँसुओं में बहा नहीं जाता ॥३॥
चोट खा खा मसक मसक करके ।
भीत जैसा ढहा नहीं जाता ॥४॥

थक गया, हाथ कुछ नहीं आया।
मुझ से पानी मद्दा नहीं जाता ॥५॥

कुछ उलटी सीधी बातें

द्विपद

जला सब तेल दीया बुझ गया है अब जलेगा क्या।
बना जब पेड़ उकठा काठ तब फूले फलेगा क्या ॥ १ ॥
रहा जिस में न दम जिस के लहू पर पड़ गया पाला।
उसे पिटना पछड़ना ठोकरें खाना खलेगा क्या ॥ २ ॥
भले ही बेटियाँ बहनें लुटें बरबाद हों बिगड़ें।
कलेजा जब कि पत्थर बन गया है तब गलेगा क्या ॥ ३ ॥
चलेंगे चाल मनमानी बनी बातें बिगाड़ेंगे।
जो हैं चिकने घड़े उनपर किसी का बस चलेगा क्या ॥ ४ ॥
जिसे कहते नहीं अच्छा उसी पर हैं गिरे पड़ते।
भला कोई कहीं इस भाँत अपने को छलेगा क्या ॥ ५ ॥
न जिसने घर सँभाला देश को क्या वह सँभालेगा।
न जो मक्खी उड़ा पाता है वह पंखा झलेगा क्या ॥ ६ ॥
मरेंगे या करेंगे काम यह जी में ठना जिसके।
गिरे सर पर न बिजली क्यों जगह से वह टलेगा क्या॥७॥

नहीं कठिनाइयों में बीर लौं कायर ठहर पाते ।
सुहागा आँच खाकर काँच के ऐसा ढलेगा क्या ॥ ८ ॥
रहेगा रस नहीं खो गाँठ का पूरी हँसी होगी ।
भला कोई पयालों को कतर घी में तलेगा क्या ॥ ९ ॥
गया सौ सौ तरह से जो कसा कसना उसे कैसा ।
दली बीनी बनाई दाल को कोई दलेगा क्या ॥१०॥
भला क्यों छोड़ देगा मिल सकेगा जो वही लेगा ।
जिसे बस एक लेने की पड़ी है वह न लेगा क्या ॥११॥
सगों के जो न काम आया करेगा जाति-हित वह क्या ।
न जिससे पल सका कुनबा नगर उससे पलेगा क्या ॥१२॥
रँगा जो रंग में उसके बना जो धूल पावों की ।
रँगेगा वह बसन क्यों राख तन पर वह मलेगा क्या ॥१३॥
करेगा काम धीरा कर सकेगा कुछ न बातूनी ।
पलों में खर बुझेगा काठ के ऐसा बलेगा क्या ॥१४॥
न आँखों में बसा जो क्या भला मन में बसेगा वह ।
न दरिया में हला जो वह समुन्दर में हलेगा क्या ॥१५॥

—❀—

दिल के फफोले

छतुका

जिसे सूझ कर भी नहीं सूझ पाता।
नहीं बात बिगड़ी हुई जो बनाता।
फिसल कर सँभलना जिसे है न आता।
नहीं पाँव उखड़ा हुआ जो जमाता।
पड़ेगा सुखों का उसे क्यों न लाला।
सदा ही सहेगा न वह क्यों कसाला॥ १॥

रँगा जो नहीं रंगतों में समय की।
नहीं राह काँटों भरी जिसने तय की।
बहुत है कँपाती जिसे बात भय की।
नहीं तान जिसने सुनी नीति नय की।
गला बेतरह क्यों न उस का फँसेगा।
उजड़ता हुआ घर न उसका बसेगा॥ २॥

नहीं देखता जो कि क्या हो रहा है।
न अब भी जगा, जो पड़ा सो रहा है।
बुरे बीज अपने लिये बो रहा है।
बचा मान जो दिन बदिन खो रहा है।
भला ठोकरें खायगा वह न कैसे।
रसातल चला जायगा वह न कैसे॥ ३॥

बढ़े जाँय आगे पड़ोसी हमारे।
चढ़े जाँय ऊंचे चलन के सहारे।
समय देख करके करें काम सारे।
सँभाले सँभल जाँय सुधरें सुधारें।
मगर हम रहें करवटें ही बदलते।
सबेरा हुए भी रहें आँख मलते ॥ ४ ॥

भला किस तरह तो न पीछे पड़ेंगे।
सभी दुख न क्यों सामने आ अड़ेंगे।
हमें वेतरह क्यों न काँटे गड़ेंगे।
चपत लोग कैसे न हम को जड़ेंगे।
लगातार तो हम लटेंगे न कैसे।
पिसेंगे लुटेंगे पिटेंगे न कैसे ॥ ५ ॥

घटी हो रही है घटे जा रहे हैं।
बहुत जातियों में बँटे जा रहे हैं।
लगातार पीछे हटे जा रहे हैं।
जथे बाँध करके जटे जा रहे हैं।
गला फँस गया है बला में पड़े हैं।
मगर कान तब भी न होते खड़े हैं ॥ ६ ॥

न हम अनबनों से भगाये भगेंगे।
न हम एकता रंगतों में रँगेंगे।

नहीं काम में हम लगाये लगेंगे।
जगाये गये पर नहीं हम जगेंगे।
भला धूल में तो मिलेंगे न कैसे।
हमारे खुले मुँह सिलेंगे न कैसे॥ ७॥

न हित की सुनेंगे न हित की कहेंगे।
जहाँ बोलना है वहाँ चुप रहेंगे।
सहेंगे सभी की न घर की सहेंगे।
अगर कुछ महेंगे तो पानी महेंगे।
बुरा हाल है बेतरह आँख फूटी।
मगर फूट की बात अब भी न छूटी॥ ८॥

भली बात हम को न लगती भली है।
बुरी से बुरी चाल हम ने चली है।
गई भूल हम को भलाई गली है।
हमीं से पड़ी जाति में खलबली है।
मगर ढंग बदला न तब भी हमारा।
हितों से हमीं कर रहे हैं किनारा॥ ९॥

लड़ेंगे अगर तो सगों से लड़ेंगे।
बला बन गले दूसरों के पड़ेंगे।
न अड़ना जहाँ चाहिये वाँ अड़ेंगे।
बुरी राह में संग बनकर गड़ेंगे।

चमक किस तरह तो सकेगा खिलें ।
न क्यों जायगा डूब बेड़ा हमारा ॥ ८ ॥

—❀—

अपने दुखड़े

द्विपद

देश को जिस ने जगाया जगे सोने न दिया ।
आग घर घर में बुरी फूट को बोने न दिया ॥ १ ॥
है वही बीर पिया दूध उसी ने मा का ।
जाति को जिस ने जिगर थाम के रोने न दिया ॥ २ ॥
बन गये भोले बहुत, अपनी भलाई भूली ।
है इसी भूल ने अब तक भला होने न दिया ॥ ३ ॥
बार से कैसे दुखों के न भला दब जाते ।
ऐब अपना हमें अदबार ने खोने न दिया ॥ ४ ॥
किस तरह बात बने क्यों न दबा अनबन ले ।
प्यार का बोझ बनावट ने तो ढोने न दिया ॥ ५ ॥
हो सके मेल क्यों हम कैसे गले मिल पावें ।
मैल जी का बुरे मैलान ने खोने न दिया ॥ ६ ॥
तो किसी काम की रंगत न रही जो उसने ।
भाव रंगों में उमंगों को भिगोने न दिया ॥ ७

नहीं ३ का हमें लोग कहेंगे कैसे।
जगआँसू ने अगर मोती पिरोने न दिया ॥ ८ ॥

—❀—

चाहिये

द्विपद

राह पर उस को लगाना चाहिये।
जाति सोती है जगाना चाहिये ॥ १ ॥
हम रहेंगे यों बिगड़ते कब तलक।
बात बिगड़ी अब बनाना चाहिये ॥ २ ॥
खा चुके हैं आज तक मुँह की न कम।
सब दिनों मुँह को न खाना चाहिये ॥ ३ ॥
हो गई मुद्दत झगड़ते ही हुए।
यों न झगड़ों को बढ़ाना चाहिये ॥ ४ ॥
अनबनों के चंगुलों से छूट कर।
फूट को ठोकर जमाना चाहिये ॥ ५ ॥
पत उतरते ही बहुत दिन हो गये।
बच गई पत को बचाना चाहिये ॥ ६ ॥
चाल बेढंगी न चलते ही रहें।
ढंग से चलना चलाना चाहिये ॥ ७ ॥

क्या करेंगी सामने आ उलझनें ।
हां उलझ उसमें न जाना चाहिये ॥ ८ ॥
ठोकरें खाकर न मुंह के बल गिरें ।
गिर गयों को उठ उठाना चाहिये ॥ ९ ॥
रंगतें दिन दिन बिगड़ने दें न हम ।
रंग अब अपना जमाना चाहिये ॥१०॥
जाँय काँटों से न भर सुख-क्यारियाँ ।
फूल अब उस में खिलाना चाहिये ॥११॥
है भरोसा भाग का अच्छा नहीं ।
भूत भरमों का भगाना चाहिये ॥१२॥
वे ठिकाने तो वहुत दिन रह चुके ।
अब कहीं कोई ठिकाना चाहिये ॥१३॥
है उजड़ने में भलाई कौनसी ।
घर उजड़ता अब बसाना चाहिये ॥१४॥
जा रही है जान तो जाये चली ।
जाति को मर कर जिलाना चाहिये ॥१५॥

—❀—

उलटी समझ

जाति ममता मोल जो समझें नहीं ।
तो मिलों से हम करें मैला न मन ।

देश-हित का रँग न जो गाढ़ा चढ़ा।
तो न डालें गाढ़ में गाढ़ा पहन॥ १॥

धूल झोंकें न जाति आँखों में।
फाड़ देवें न लाज की चद्दर।
दर बदर फिर न देशको कोसें।
मूँद हित दर न दें पहन खद्दर॥ २॥

तो गिना जाय क्यों न खुदरों में।
क्यों उगादे न बीज बरबादी।
काम की खाद जो न बन पाई।
देश-हित-खेत के लिये खादी॥ ३॥

हित सचाई बिना नहीं होगा।
लोग ताना अनेक तन देखें।
कात लें सूत, लें चला करघे।
सैकड़ों गज गजी पहन देखें॥ ४॥

पैन्ह मोटा न पेट मोटा हो।
सब बुरी चाट बाँट में न पड़े।
छल कपट का न पैन्ह लें जामा।
हथ-कते सूत के पहन कपड़े॥ ५॥

समझ का फेर

है भरी कूट कूट कोर कसर।
मा बहन से करें न क्यों कुट्टी।
लोग सहयोग कर सकें कैसे।
है असहयोग से नहीं छुट्टी॥ १॥

मेल बेमेल जाति से करके।
हम मिटाते कलंक टीके हैं।
जाति है जा रही मिटी तो क्या।
रंग में मस्त यूनिटी के हैं॥ २॥

अनसुनी बात जातिहित की कर।
मुँह बना किस लिये न दें टरखा।
कात चरखा सके नहीं अब भी।
हैं मगर लोग हो गये चरखा॥ ३॥

मा बहन बेटियाँ लुटें तो क्या।
देख मुँह मेल का उसे लें सह।
हो बड़ी धूम औ धड़ल्ले से।
मन्दिरों पर तमाम सत्याग्रह॥ ४॥

बे समझ और आँख के अंधे।
देख पाये कहीं नहीं ऐसे।

जो न ताराज हो गये हिन्दू।
मिल सकेगा स्वराज तो कैसे ॥ ५ ॥

—❀—

भारत

द्विपद

तेरा रहा नहीं है कब रंग ढंग न्यारा।
कब था नहीं चमकता भारत तेरा सितारा ॥ १ ॥
किसने भला नहीं कब जी में जगह तुझे दी।
किसकी भला रहा है तू आँख का न तारा ॥ २ ॥
वह ज्ञान-जोत सब से पहले जगी तुझी में।
जग जगमगा रहा है जिसका मिले सहारा ॥ ३ ॥
किस जाति को नहीं है तूने गले लगाया।
किस देश में बही है तेरी न प्यार-धारा ॥ ४ ॥
तू ही बहुत पते की यह बात है बताता।
सब में रमा हुआ है वह एक राम प्यारा ॥ ५ ॥
कुछ भेद हो भले ही उन की रहन सहन में।
पर एक असल में हैं हिन्दू तुरुक नसारा ॥ ६ ॥
उनमें कमाल अपना है जोत ही दिखाती।
रँग एक हो न रखता चाहे हरेक तारा ॥ ७ ॥

तो क्या हुआ अगर हैं प्याले तरह तरह के ।
जब एक दूध उनमें है भर रहा तरारा ॥ ८ ॥
ऊंची निगाह तेरी लेगी मिला सभी को ।
तेरा विचार देगा कर दूर भेद सारा ॥ ९ ॥
हलचल चहल-पहल औ अनबन अमन बनेगी ।
औ फूल जायगा बन जलता हुआ अँगारा ॥१०॥
जो चैन चाँदनी में होंगे महल चमकते ।
सुख चाँद झोंपड़ों में तो जायगा उतारा ॥११॥
कर हेल मेल हिल मिल सब ही रहें सहेंगे ।
हो जायगा बहुत ही ऊँचा मिलाप पारा ॥१२॥
सब जाति को रँगेगी तेरी मिलाप रंगत ।
तेरा सुधार होगा सब देश को गवारा ॥१३॥
उस काल प्रेम धारा जग में उमग बहेगी ।
घर घर घहर उठेगा आनन्द का नगारा ॥१४॥

—❀—

भारत दिया अमन का वाले तेरे बलेगा ।
छाया हुआ अँधेरा टाले तेरे टलेगा ॥ १ ॥
सारी भलाइयों की रंगत बहुत भली पा ।
वह रंग है तुझी में जिसमें जगत ढलेगा ॥ २ ॥

है एक गोद तेरी जिसमें हरेक हिन्दू।
अँगरेज औ मुसल्माँ प्यारों सहित पलेगा ॥ ३ ॥
उनके मिलाप ही का पौधा बहुत निराला।
हित फूल ला अनोखे अनमोल फल फलेगा ॥ ४ ॥
यों तू दिखा सकेगा वह प्यार पंथ न्यारा।
जिस पर जगत किसी दिन चाहों भरा चलेगा ॥ ५ ॥
उस दिन बधाइयों की सब ओर धूम होगी।
सब देश के घरों में घी का दिया जलेगा ॥ ६ ॥
ठेसें बुरी किसी के दिल को नहीं लगेंगी।
दिल एक देख मलता दिल दूसरा मलेगा ॥ ७ ॥
अरमान दूसरों के तब जाँयगे न कुचले।
कोई कहीं किसी को छलकर नहीं छलेगा ॥ ८ ॥
सब ओर आदमीयत की धूम धाम होगी।
हित रंग रख न सकना सब को बहुत खलेगा ॥ ९ ॥
कोई कुचल उमंगें औ रौंद हौसलों को।
कोदो नहीं कलेजे पर और के दलेगा ॥१०॥
धन मूस चूस लोहू ले कौर छीन मुँह का।
कोई निहाल होने का नाम भी न लेगा ॥११॥
सब जाति के करों में होगा मिलाप झंडा।
सब देश प्यार ही के सिरपर चँवर झलेगा ॥१२॥

सेवा

चतुर्दश पदी

देख पड़ी अनुराग-राग-रंजित रवितन में।
छबि पाई भर विपुल-विभा नीलाभ-गगन में।
बर-आभा कर दान ककुभ को द्युति से दमकी।
अन्तरिक्ष को चारु ज्योतिमयता दे चमकी॥
कर सकान्ति गिरि-सानु-सकल को कान्त दिखाई।
शोभितकर तरुशिखा निराली-शोभा पाई।
कलित बना कर कनक-कलश को हुई कलित-तर।
समधिक-धवलित सौध-धाम कर बनी मनोहर॥
लता बेलि को परम-ललित कर लही लुनाई।
कुसुमावलि को विकच बना बिकसित दिखलाई।
ज्वलित हुई कर सरित-सरोवर-सलिल समुज्वल।
उठी जगमगा परम-प्रभामय कर अवनीतल॥
निज सेवा फल से हो हुई प्रात को किरण प्रति फलित।
विकसित सरसित सफलित लसित सम्मानित आभा बलित।

सेवा

चौपदे

जो मिठाई में सुधा से है अधिक।
खा सके वह रस भरा मेवा नहीं।
तो भला जग में जिये तो क्या जिये।
की गई जो जाति की सेवा नहीं॥ १॥

हो न जिसमें जातिहितका रंग कुछ।
बात वह जो में ठनी तो क्या ठनी।
हो सकी जब देश की सेवा नहीं।
तब भला हमसे बनी तो क्या बनी॥ २॥

बेकसों की बेकसी को देख कर।
जब नहीं अपने सुखों को खो सके।
तब चले क्या लोग सेवा के लिये।
जब न सेवा पर निछावर हो सके॥ ३॥

तो न पाया दूसरों का दुख समझ।
दीन दुखियों का सके जो दुख न हर।
भाव सेवा का बसा जी में कहाँ।
बेबसों का जो बसा पाया न घर॥ ४॥

उस कलेजे को कलेजा क्यों कहें।
हों नहीं जिसमें कि हित धारें बहीं।
भाव सेवा का सके तब जान क्या।
कर सके जो लोक की सेवा नहीं॥ ५॥
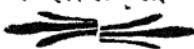
सुशिक्षा-सोपान

सुशिक्षा-सोपान

प्रबोध पंचक

पद

जी लगा पोथी अपनी पढ़ो।
केवल पढ़ो न पोथी ही को, मेरे प्यारे कढ़ो॥
कभी कुपथ में पाँव न डालो, सुपथ ओर ही बढ़ो।
भावों की ऊँची चोटी पर बड़े चाव से चढ़ो॥
सुमति-खंजरी को मानवता-रुचिर-चामसे मढ़ो।
वर सोनार सम परम-मनोहर पर-हित गहने गढ़ो॥ १॥

बड़ा ही जी को है दुख होता।
कोई जो रसाल-क्यारी में है बबूल को बोता॥
लसता है सुन्दर भावों-सँग उर में रसका सोता।
बुरे भाव उपजा कर उसमें मूढ़ मूल है खोता॥ २॥

स्वाति की बूँद जहाँ जा पड़ी।
बहुत काम आई, दिखलाई उपकारिता बड़ी॥

बनी कपूर कदलि-गोफों में सीपी में कल मोती।
खोले मुख प्यासे चातक-हित बनी सुधाकी सोती॥
ऐसे ही तुम जहाँ सिधाओ उपकारक बन जाओ।
काँटों में भी बड़े अनूठे सुन्दर फूल खिलाओ॥ ३॥

आहा! कितना है मन भाता।
चारों ओर जलधि प्रभु की महिमा का है लहराता॥
भरे पड़े हैं इसमें सुन्दर सुन्दर रत्न अनेकों।
बड़े भाग वाला वह जन है जिसने पाया एको॥
शंकर कपिल शुकादिक के कर एक आध था आया।
तो भी उसने ही आलोकित भूतल सकल बनाया॥
ऐसा बड़े भाग वाला जन तुम भी बनना चाहो।
जी में जो अनुराग तनिक भी जग-जन के हित का हो॥ ४॥

नई पौधों से ही है आस।
जाति जिलाने वाली, जड़ी सजीवन है इनही के पास॥
इनके बने जाति बनती है बिगड़े हो जाती है नास।
इनही से जातीय भाव का होता है विधि साथ विकास॥
येहैं जाति-समाज देहके वसन-विधायक कुसुम-कपास।
येई हैं नूतन बिचार उडु-राजि-विकाशक विमल अकास॥
उन्हीं नई पौधों में तुम हो, देखो होय न हृदय निरास।
गौरव लाभ करो फैला कर तम में अति कमनीय उजास॥ ५॥

भोर का उठना।

पद

भोर का उठना है उपकारी।
जीवन-तरु जिससे पाता है हरियाली अति प्यारी॥
पा अनुपम पानिप तन बनता है बल-संचय-कारी।
पुलकित, कुसुमित, सुरभित, हो जाती है जन-उर-क्यारी॥

लालिमा ज्यों नभ में छाती है।
त्यों ही एक अनूठी धारा अवनी पर आती है॥
परम-रुचिरता-सहित सुधा-बूँदों सी बरसाती है।
रसमय, मुदमय, मधुर नाद-मय सब दिशा बनाती है॥
तृण, वीरुध, तरु, लता, वेलि को प्रतिपल पुलकाती है।
बन उपवन में रुचिर मनोहर कुसुम-चय खिलाती है॥
प्रान्तर-नगर-ग्राम-गृह-पुर में सजीवता लाती है।
उर में उमग पुलक तन में द्युति दृगमें उपजाती है॥
सदा भोर उठने वालों की यह प्यारी थाती है।
यह न्यारी-निधि बड़े भाग वाली जनता पाती है॥

प्रात की किरणें कोमल प्यारी।
जहाँ तहाँ फलती तरु तरु पर दिखलाती छबि न्यारी॥

जब आलोकित करती हैं अवनी कर प्रकृति सँवारी।
तब युग नयन देख पाते हैं देव-कुसुम कल-क्यारी॥
जीवन लहर जगमगा जाती है पा द्युति रुचिकारी।
उर नव विभावान बनता है जैसे रजनि दिवारी॥

प्रात-पवन है परम निराली।
तन निरोग करने वाली ओषध उसमें है डाली॥
उसकी अति रुचिकर शीतलता चाल मृदुलता ढाली।
कुसुम-कली लौं है जी की भी कली खिलाने वाली॥
होती है जनता मलयानिल-सौरभ से मतवाली।
किन्तु सामने यह रख देती है फूलों की डाली॥
प्रात-पवन ही से मिलती है प्रीतिकरी-मुखलाली।
उसके सेवन से बढ़ती है जीवन-तरु-हरियाली॥

प्रात उठने में कभी न चूको।
अभिनव-किरण-जाल-आरंजित नित अवलोको भू को॥
दुग्ध-फेन-सम सुकुसुम-कोमल तल्प है परम-प्यारा।
किन्तु कहाँ उससे सुखकर है ऊषा कालिक धारा॥
प्रात-समय की सहज नींद है बहु विनोदिनी मीठी।
किन्तु पास है प्रात-पवन के अति प्रियता की चीठी॥
करो निछावर आलस को उस पर कर पुलकित छाती।
प्रात अटन से जो सजीवता है धमनी में आती॥

काम काज की विविध असुविधा जीवन की बहु बाधा।
एक प्रात उठने ही से कम हो जाती है आधा॥
बालक युवा सभी पाते हैं उससे सदा सफलता।
सबके लिये प्रात का उठना है अमृत-फल फलता॥

—❀—

अविनय

छप्पै

ढाल पसीना जिसे बड़े प्यारों से पाला।
जिसके तन में सींच सींच जीवन-रस डाला॥
सुअंकुरित अवलोक जिसे फूला न समाया।
पा करके पल्लवित जिसे पुलकित हो आया॥
वह पौधा यदि न सुफल फले तो कदापि न कुफल फले।
अवलोक निराशा का बदन नीर न आँखों से ढले॥ १॥
बालक ही है देश-जाति का सच्चा-संबल।
वही जाति-जीवन-तरु का है परम मधुर फल॥
छात्र-रूप में वही रुचिर-रुचि है अपनाता।
युवक-रूप में वही जाति-हित का है पाता॥
वह पूत पालने में पला विद्या-सदनों में बना।
उज्ज्वल करता है जाति-मुख कर लोकोत्तर साधना॥ २॥

बालक ही का सहज-भाव-मय मुखड़ा प्यारा।
है सारे जातीय-भाव का परम सहारा॥
युवक जनों के शील आत्म-संयम शुचि रुचि पर।
होती हैं जातीय सकल आशायें निर्भर॥
इनके बनने से जातियाँ बनीं देश फूला फला।
इनके बिगड़े बिगड़ा सभी हुआ न हरि का भी भला॥ ३॥

इन बातों को सोच आँख रख इन बातों पर।
पाठालय स्कूल कालिजों में जा जा कर॥
जब मैंने निज युवक और बालक अवलोके।
तो जी का दुख-बेग नहीं रुकता था रोके॥
नस नस में कितनों की भरा वह अविनय मुझको मिला।
जिसको बिलोक कर सुजनता-मुख-सरोज न कभी खिला॥ ४॥

विनय करों में सकल सफलता की है ताली।
विनय पुट बिना नहिं रहती मुखड़े की लाली॥
विनय कुलिश को भी है कुसुम समान बनाता।
पाहन जैसे उर को भी है वह पिघलाता॥
निज कल करतूतें कर विनय होता है वाँ भी सफल।
बन जाती है बुधि-बल-सहित जहाँ बचन-रचना विफल॥ ५॥

किन्तु हमारी नई पौध उससे बिगड़ी है।
उस पर उसकी उचित आँख अब भी न पड़ी है॥

वह गिनती है उसे आत्म-गौरव का बाधक।
चित को कुछ बलहीन-वृत्तियों का आराधक॥
वह निज बिचार तज कर नहीं शिष्टाचार निबाहती।
जो कुछ कहता है चित्त वह वही किया है चाहती॥ ६॥

अनुभव वह संसार का तनिक भी नहिं रखती।
तह तक उसकी आँख आज भी नहीं पहुँचती॥
पक्के नहीं कोई विचार, हैं सभी अधूरे।
पढ़ने के दिन हुए नहीं अब तक हैं पूरे॥
पर तो भी वह है बड़ों से बात बात में अकड़ती।
पथ चरम-पंथियों का पकड़ है कर से अहि पकड़ती॥ ७॥

बहुत-बड़ा-अनुभवी राज-नीतिक-अधिकारी।
जाति-देश का उपकारक सच्चा-हितकारी॥
उसकी रुचि-प्रतिकूल बोल कब हुआ न बंचित।
कह कर बातें उचित मान पा सका न किंचित॥
वह पीट पीट कर तालियाँ उसे बनाती है विवश।
या 'बैठ जाव' की ध्वनि उठा हर लेती है विमल यश॥ ८॥

उसके इस अविवेक और अविनय के द्वारा।
क्यों न लोप हो जाय देश का गौरव सारा॥
कोई उन्नत हृदय क्यों न सौ टुकड़े होवे।
क्यों न जाति आमूल सफलता अपनी खोवे॥

रह जाय देश हित के लिये नहीं ठिकाना भी कहीं।
पर उसके कानों पर कभी जूँ तक रेंगेगी नहीं ॥ ९ ॥

पिटी तालियों में पड़ देश रसातल जावे।
धूम धाम 'गो आन' धाक जातीय नसावे ॥
'हिअर हिअर' रव तले पिसें सारी सुविधायें।
आशाओं का लहू अकाल-उमंग बहायें ॥
यह देख देश-हित-रत सुजन क्यों न कलेजा थाम ले।
पर भला उसे क्या पड़ी है जो अनुभव से काम ले ॥ १० ॥

जिनके रज औ बीज से उपज जीवन पाया।
पली गोद में जिनकी सोने की सी काया ॥
उनकी रुचि भी नहीं स्वरुचि-प्रतिकूल सुहाती।
बरन कभी आवेग-सहित है कुचली जाती ॥
अभिरुचि-प्रतिकूल विचार भी ठोकर खातेही रहें।
उनके सनेहमय मृदुल उर क्यों न बुरी ठेसें सहें ॥ ११ ॥

पर उसका अपराध नहीं इसमें है इतना।
हम लोगों का दोष इस विषय में है जितना ॥
जैसे साँचे में हमने उसको है ढाला।
जैसे ढँग से हमने उसको पोसा पाला ॥
लीं सांसें जैसी वायु में वह वैसी ही है बनी।
कैसे तप-ऋतु हो सकेगी शरद्-समान सुहावनी ॥ १२ ॥

आत्मत्याग है कहीं आत्मगौरव से गुरुतर।
निज विचारसे उचित विचार बहुत है बढ़कर॥
कर निज-चित-अनुकूल न मन गुरुजनका रखना।
सुधा पग तले डाल ईख का रस है चखना॥
अनुभवी लोक-हित-निरत की विबुधों को अवमानना।
है विमल जाति-हित-सुरुचि को कुरुचि-कीचमें सानना॥१३॥

किन्तु जब नहीं उसने इन बातों को जाना।
यदि जाना तो उसे नहीं जी से सनमाना।
किसी भाँति जब अविनय नेही आदर पाया॥
तब वह कैसे नहीं करेगी निज मन भाया॥
यह रोग बहुत कुछ है दबा हो हिन्दू-रुचि से निबल।
पर यदि न आँख अबभी खुली दिन दिन होवेगा सबल॥१४॥

प्रभो! हमारी नई पौध निजता पहचाने।
अपने कुल-मरजाद जाति-गौरव को जाने॥
चुन लेने के लिये, विनय-रुचिकर-रस चीखे।
सबका सदा यथोचित आदर करना सीखे॥
धारा उसकी धमनियों में पूत जाति-हित की बहे।
पर गुरुजन के अनुराग का रुचिर रंग उस में रहे॥१५॥

कुसुम चयन

चतुर्दश पदी

जो न बने वे विमल लसे विधु-मौलि मौलि पर।
जो न बने रमणीय सज, रमा-रमण कलेवर॥
बर बृन्दारक बृन्द पूज जो बने न बन्दित।
जो न सके अभिनन्दनीय को कर अभिनन्दित॥
जो विमुग्ध कर हुए वे न वन मंजुल-माला।
जो उनसे सौरभित प्रेम का बना न प्याला॥
कर के नृप-कुल-तिलक कीट-रत्नों को रंजित।
कर न सके जो कलित-कुसुम-कुल महिमा व्यंजित॥
जो न सुबासित हुआ तेल उनसे वह आला।
जिसने सुखमय व्यथित-जीव-जीवन कर डाला॥
जो न गौरवित हुए वे परस गुरु-पद-पंकज।
जो न लोक हित करी बनी उनकी सुन्दर रज॥
तो किसी काल में क्यों करे विकच-कुसुम-चय का चयन।
कर भावुकता अवमानना भाव भरा भावुक सुजन॥ १

बन-कुसुम

रोला

एक कुसुम कमनीय म्लान हो सूख बिखर कर।
पड़ा हुआ था धूल भरा अवनीतल ऊपर।
उसे देख कर एक सुजन का जी भर आया।
वह कातरता सहित बचन यह मुख पर लाया॥ १॥
अहो कुसुम यह सभी बात में परम निराला।
योग्य करों में पड़ा नहीं बन सका न आला।
जैसे ही यह बात कथन उसने कर पाई।
वैसे ही रुचिकरी-उक्ति यह पड़ी सुनाई॥ २॥
देख देख मुख हृदय-हीन-जन अकुलाने से।
दबने छिदने बँधने बिधने नुच जाने से।
कहीं भला है अपने रँग में मस्त दिखाना।
अंत-समय हो म्लान विजन-बन में झड़ जाना॥ ३॥
कहा सुजन ने कहाँ नहीं दुख-बदन दिखाता।
बन में ही क्या कुसुम नहीं दल से दब जाता।
काँटों से क्या कभी नहीं छिदता बिंधता है।
क्या जालाओं बीच विवश लौं नहिं बँधता है॥ ४॥

कीड़ों से क्या कभी नहीं वह नोचा जाता।
मधुप उसे क्या बार बार नहिं विकल बनाता।
ओले पड़ कर विपत नहीं क्या उस पर ढाते।
चल प्रतिकूल समीर क्या नहीं उसे कँपाते॥ ५॥

कहीं भला है अपने रँग में मस्त दिखाना।
पर उससे है भला लोकहित में लग जाना।
मरने को तो सभी एक दिन है मर जाता।
पर मरना कुछ हित करते, है अमर बनाता॥ ६॥

यदि बाटिका-प्रसून टूटते ही कुम्हलाता।
छिदते बिधते बंधन में पड़ते अकुलाता।
कभी नहीं तो राजमुकुट पर शोभा पाता।
न तो चढ़ाया अमरवृन्द के शिर पर जाता॥ ७॥

बिकच बदन है विपत काल में भी दिखलाता।
इसी लिये वह विपुल-हृदय में है बस जाता।
देख कठिनता-बदन बदन जिसका कुम्हलाया।
कब वसुधा में सिद्धि समादर उसने पाया॥ ८॥

बन-प्रसून-पंखड़ी कभी जो थी छबि थाती।
मिट्टी में है छीज छीज कर मिलती जाती।
यही योग्य कर में पड़ कर उपकारक होती।
रोगी जन का रोग ओषधी बन कर खोती॥ ६॥

मिल कर तिल के साथ सुवासित तेल बनाती।
कितने शिर की व्यथा दूर कर के सरसाती।
इस प्रकार वह भले काम ही में लग पाती।
बन-प्रसून की सफल चरम गति भी हो जाती ॥१०॥

जो जग-हित पर प्राण निछावर है कर पाता।
जिसका तन है किसी लोक-हित में लग जाता।
वह चाहे तृण तरु खग मृग चाहे होवे नर।
उसका ही है जन्म सफल है वही धन्यतर ॥११॥

कृतज्ञता

चौबोला

माली की डाली के बिकसे कुसुम बिलोक एक बाला।
बोली ऐ अति भोले कुसुमो खल से तुम्हें पड़ा पाला॥
बिकसित होते ही वह नित आ तुम्हें तोड़ ले जाता है।
उदर-परायणता वश पामर तनिक दया नहिं लाता है॥ १ ॥

सुनो इसलिये तुम्हें चाहिये चुनते ही मचला जाओ।
माली के कर में पड़ते ही तजो बिकचता कुम्हलाओ॥
इस प्रकार जब उसके हित में बाधायें पहुँचाओगे।
उसकी आँखें तभी खुलेंगी औ तुम भी कल पाओगे॥ २ ॥

बोले कुसुम ऐ सदय-हृदये कृपा देख करके न्यारी।
सादर धन्यवाद देता हूँ उक्ति बड़ी ही है प्यारी॥
किन्तु विनय इतनी है जिसने सींचा सदा सलिल द्वारा।
जिसने कितनी सेवायें कर की सुखमय जीवन-धारा॥ ३॥
क्या उससे व्यवहार इस तरह का समुचित कहलावेगा।
कोई कर ऐसा कृतज्ञता को मुख क्या दिखलावेगा?॥
तोड़ लिये जावें या सूखें नुचें झड़ें या कुम्हलावें।
किन्तु चाहते नहीं धरा को बुरा चलन सिखला जावें॥ ४॥
कहाँ भाग जो मेरे द्वारा माली का परिवार पले।
उसका उदर भरे दुख छूटे उस की आई विपत टले॥
प्रतिपालक उर में आशा की अति मृदु बेलि उलहती है।
वह प्रतिपालित पौध बुरी है जो कुढ़ उसे कुचलती है॥ ५॥
आज या कि कल कुम्हलाते ही पंखड़ियाँ भी झड़ जातीं।
रज हो जाने त्याग उस समय कौन काम में वे आतीं॥
प्रतिपालक माली कर में पड़ उसका हितकारक होना।
सुरभित कर कितने हृदयों में बीज सरसतायें बोना॥ ६॥
रंगालय सुर-सदन राज-प्रासादों में आदर पाना।
बिविध बिलास केलि क्रीड़ा में हाथों हाथ लिये जाना।
अच्छा है, अथवा मिट्टी में मिल जाना ही है उत्तम॥
है सुज्योतिमय जीवन सुन्दर अथवा मलिन निमज्जिततम॥ ७॥

सुख के कीड़े किसी काल में आदर मान नहीं पाते।
उस का जीवन सफल न होगा जो दुख से हैं अकुलाते ॥
हम इस में ही परम-सुखित हैं बिकच बनें औ सरसावें।
पड़ सुकरों में करें लोक-हित किसी काम में लग जावें ॥

एक काठ का टुकड़ा

षोडशपदी

जलप्रवाह में एक काठ का टुकड़ा बहता जाता था।
उसे देख कर बार बार यह मेरे जी में आता था।
पाहन लौं किस लिये उसे भी नहीं डुबाती जल-धारा।
एक किस लिये प्रतिद्वंदी है और दूसरा है प्यारा ॥
मैं बिचार में डूबा ही था इतने में यह बात सुनी।
जो सुउक्ति कुसुमावलि में से गई रही रुचि साथ चुनी ॥
अति कठोर पाहन होता है महा तरल होता है जल।
उसमें से चिनगी कढ़ती है इस में खिलता है शत दल ॥
युगल भिन्न मति गति रुचि वालों में होता है प्यार नहीं।
स्वच्छ प्रेम की धारायें कब अवनि विषमता बीच बहीं।
प्रकृति नियम प्रतिकूल कहो क्या चल सकता था सलिल कभी
पाहन को वह यदि न डुबा देता बिचित्रता रही तभी ॥

कभी काठ भी शीतल छाया पत्र पुष्प फल के द्वारा ।
लोक हित निरत रहा सलिल लौं भूल आत्म गौरव सारा ॥
सम स्वभाव गुण शीलवान का रिक्त हुआ कब हित-प्याला ।
फिर जल कैसे उसे डुबाता आजीवन जिसको पाला ॥

— ❀ —

नादान

पद

कर सकेंगे क्या वे नादान ।
बिन सयानपन होते जो हैं बनते बड़े सयान ॥
कौआ कान ले गया सुन जो नहिं टटोलते कान ।
वे क्यों सोचें तोड़ तरैया लाना है आसान ॥ १ ॥
है नादान सदा नादान ।
काक सुनाता कभी नहीं है कोकिल की सी तान ।
बक सब काल रहेगा बक ही वही रहेगी बान ।
उसको होगी नहीं हंस लौं नीर छीर पहचान ॥ २ ॥
है नादान अँधेरी रात ।
जो कर साथ चमकतों का भी रही असित-अवदात ।
वह उसके समान ही रहता है अमनोरम-गात ।
प्रति उरमें उससे होता है बहु-दुख छाया पात ॥ ३ ॥

है नादान सदा का कोरा।
सब में नादानी रहती है क्या काला क्या गोरा।
नासमझी सूई के गँव का है वह न्यारा डोरा।
होता है जड़ता-मजीठ के माठ मध्य वह बोरा ॥ ४ ॥
नादानों से पड़े न पाला।
सिर से पाँवों तक होता है यह कुढंग में ढाला।
सदा रहा वह मस्त पान कर नासमझी मद-प्याला।
उस से कहीं भला होता है साँप बहु गरल वाला ॥ ५ ॥

जीवनी-धारा

आन में जिनकी दिखाती देश-ममता है निरी।
जो सपूतों की न उँगली देख सकते हैं चिरी॥
रह नहीं सकतीं सफलतायें कभी जिनसे फिरी।
वह नई पौधें उठी हैं जातियाँ जिनसे गिरी॥
थीं इसी जातीय भाषा के हिंडोले में पलीं।
फूँक से जिनकी घटायें आपदाओं की टलीं॥ ३॥

है कलह औ फूट का जिसमें फहरता फरहरा।
दंभ-उल्लू-नाद जिसमें है बहुत देता डरा॥
मोह, आलस, मूढ़ता, जिसमें जमाती है परा।
वह अँधेरा देश का बहु आपदाओं से भरा॥
दूर करता है इसी जातीय भाषा का बदन।
भानु का सा है चमकता भाल का जिसके रतन॥ ४॥

सूझती जिनको नहीं अपनी भलाई की गली।
पड़ गई है चित्त में जिनके बड़ी ही खलबली॥
है अनाशा रंग में जिनकी सभी आशा ढली।
जिन समाजों की जड़ें भी हो गई हैं खोखली॥
ढंग से जातीय भाषा ही उन्हें आगे बढ़ा।
है समुन्नति के शिखर पर सर्वदा देती चढ़ा॥ ५॥

उस स्वकीया जाति-भाषा सर्वथा सुख-दानि को।
स्वच्छ सरला सुन्दरी आधार-भूता आनि को॥

मा समा उपकारिका, प्रतिपालिका कुल-कानि की।
उस निराली नागरी अति आगरी गुण खानि की॥
आपमें कितनी है ममता, दीजिये मुझ को बता।
आज भी क्या प्यार उससे आप सकते हैं जता? ॥ ६ ॥

खोलकर आँखें निरखिये बंग-भाषा की छटा।
मरहठी की देखिये, कैसी बनी ऊँची अटा॥
क्या लसी साहित्य-नभ में गुर्जरी की है घटा।
आह! उर्दू का है कैसा चौतरा ऊँचा पटा॥
किन्तु हिन्दी के लिये ए बार अब भी दूर हैं।
आज भी इसके लिये उपजे न सच्चे शूर हैं॥ ७ ॥

फिर कहें क्यों आप उससे प्यार सकते हैं जता।
फिर कहें क्यों आपमें है उसकी ममता का पता॥
फिर कहें क्यों है लुभाती नागरी हित-तरुलता।
किन्तु प्यारे बंधुओ देता हूँ, मैं सच्ची बता॥
दृष्टि उससे दैव की त्रिरकाल रहती है फिरी।
जिस अभागो जाति की जातीय भाषा है गिरी॥ ८ ॥

क्यों चमकते मिलते हैं बंगाल में मानव-रतन।
किस लिये हैं बंबई में देवतों से दिव्य जन॥
क्यों मुसलमानों की है जातीयता इतनी गहन।
क्यों जहाँ जाते हैं वे पाते हैं आदर, मान, धन॥

और कोई हेतु इसका है नहीं ऐ बन्धु-गन ।
ठीक है, जातीय भाषा से हुई उनकी गठन ॥ ९ ॥

आँख उठाकर देखिये इस प्रान्त की बिगड़ी दशा ।
है जहाँ पर यूथ हिन्दी-भाषियों का ही बसा ॥
आज भी जो है बड़ों के कीर्ति-चिन्हों से लसा ।
सूर, तुलसी के जनम से पूत है जिसकी रसा ॥
सिद्ध, विद्या-पीठ, गौरव-खानि, विबुधों से भरी ।
आज भी है अंक में जिसके लसी काशीपुरी ॥१०॥

अल्प भी जो है खिंचा जातीय भाषा ओर चित ।
तो दशा को देख कर के आप होवेंगे व्यथित ॥
नागरी-अनुरागियों की न्यूनता अवलोक नित ।
चित्त ऊबेगा, दृगों से बारि भी होगा पतित ॥
आह ! जाती हैं नहीं इस प्रान्त की बातें कही ।
नित्य हिन्दी को दबा उर्दू सबल है हो रही ॥११॥

यह कथन सुन कह उठेंगे आप तुम कहते हो क्या ।
पर कहूँगा मैं कि मैंने जो कहा वह सच कहा ॥
जाँच इसकी जो करेंगे आप गाँवों-बीच जा ।
तो दिखायेगा वहाँ पर आपको ऐसा समा ॥
हिन्दुओं के लाल प्रति दिन हाथ सुविधा का गहे ।
भूल अपनापन को उर्दू ओर ही हैं जा रहे ॥१२॥

जो उठाकर हाथ में दस साल पहले का गजट ।
देख लेंगे और तो होगी अधिक जी की कचट ॥
मिड्ल-हिन्दी पास का था जो लगा उस काल ठट ।
वह गया है एक चौथे से अधिक इस काल घट ॥
बढ़ रही है नित्य यों उर्दू छबीली की कला ।
घोंटते हैं हाथ अपने हाय ! हम अपना गला ॥१३॥

वन-फलों को प्यार से खा छाल के कपड़े पहन ।
राज-भोगों पर नहीं जो डालते थे निज नयन ॥
फूल सा बिकसा हुआ लख जाति-भाषा का बदन ।
जो सदा थे वारते सानंद अपना प्राण, धन ॥
उन द्विजों की हाय! कुछ संतान ने भी कह बजा ।
नागरी को पूच उर्दू पेच में पड़ कर तजा ॥१४॥

हिन्द, हिन्दू और हिन्दी-कष्ट से होके अथिर ।
खौल उठता था अहो जिनके शरीरों का रुधिर ॥
जो हथेली पर लिये फिरते थे उनके हेतु शिर ।
थे उन्हीं के वास्ते जो राज तज देते रुचिर ॥
बहु कुँवर उन क्षत्रियों के तुच्छ भोगों से डिगे ।
नागरी को छोड़ उर्दू रंगतों में ही रँगे ॥१५॥

हो जहाँ पर शिर-धरों का आज दिन यों शिर फिरा ।
फिर वहाँ पर क्यों फड़क सकती है औरों की शिरा॥

किन्तु क्यों है नागरी के पास इतना तम घिरा ।
आँख से कुछ हिन्दुओं के क्यों है उसका पद गिरा ॥
आप सोचेंगे अगर इसको तनिक भी जी लगा ।
तो समझ जायेंगे है अज्ञानता ने की दगा ॥१६॥

आज दिन भी गाँव गाँवों में अँधेरा है भरा ।
है वहाँ नहिं आज दिन भी ज्ञान का दीपक बरा ॥
आज दिन भी मूढ़ता का है जमा वाँ पर परा ।
जाति-हित के रंग से कोरी वहाँ की है धरा ॥
हाथ का पारस भला वह फेंक देगा क्यों नहीं ।
आह! उसके दिव्य गुण को जानता है जो नहीं ॥१७॥

है नगर के वासियों में ज्ञान का अंकुर उगा ।
जाति-हित में किन्तु वैसा जी नहीं अब भी लगा ॥
फूँक से वह आपदा है सैकड़ों देता भगा ।
जाति-भाषा रंग में नर-रत्न जो सच्चा रँगा ॥
उस बदन की ज्योति देती है तिमिर सारा नसा ।
जाति के अनुराग का न्यारा तिलक जिसपर लसा ॥१८॥

नागरी के नेह से हम लोग आये हैं यहाँ ।
किन्तु सच्चा त्याग हम में आज दिन भी है कहाँ ॥
जाति-सेवा के लिये हैं जन्मते त्यागी जहाँ ।
आपदायें ढूँढने पर भी नहीं मिलती वहाँ ॥

जाति-भाषा के लिये किस सिद्ध की धूनी जगी।
वे कहाँ हैं जिनके जी को चोट है सच्ची लगी ॥१९॥
निज धरम के रंग में डूबे, तजे निज बंधु-जन।
हैं यहाँ आते चले यूरोप के सच्चे रतन॥
किस लिये? इस हेतु, जिस में वे करें तमका निधन।
दीन दुखियों का हरें दुख औ उन्हें देवें सरन॥
देखिये उनको कहाँ आ करके क्या करते हैं वे।
एक हम हैं आँख से जिसकी न आँसू भी स्रवे ॥२०॥
जो अँधेरे में पड़ा है ज्योति में लाना उसे।
जो भटकता फिर रहा है, पंथ दिखलाना उसे॥
फँस गया जो रोग में है, पथ्य बतलाना उसे।
सीखता ही जो नहीं, कर प्यार सिखलाना उसे॥
काम है उनका, जिन्हें पा पूत होती है मही।
इस विषम संसार-पादप के सुधा फल हैं वही ॥२१॥
आज का दिन है बड़ा ही दिव्य हित-रत्नों जड़ा।
जो यहाँ इतने स्वभाषा-प्रेमियों का पग पड़ा॥
किन्तु होवेगा दिवस वह और भी सुन्दर बड़ा।
लाल कोई बीर लौं जिस दिन कि होवेगा खड़ा॥
दूर करने के लिये निज नागरों की कालिमा।
औ लसाने के लिये उन्नति-गगन में लालिमा ॥२२॥

राज महलों से गिनेगा झोंपड़ी को वह न कम ।
वह फिरेगा उन थलों में है जहाँ पर घोर तम ॥
जो समझते यह नहीं, है काल क्या? हैं कौन हम ?
वह बता देगा उन्हें जातीय-उन्नति के नियम ॥
वह बना देगा बिगड़ती आँख को अंजन लगा ।
जाति-भाषा के लिये वह जाति को देगा जगा ॥२३॥

वह नहीं कपड़ा रँगेगा किन्तु उर होगा रँगा ।
घर न छोड़ेगा, रहेगा पर नहीं उस में पगा ॥
काम में निज वह परम अनुराग से होगा लगा ।
प्यार होगा सब किसी से और होगा सब सगा ॥
बात में होगी सुधा उसका रहेगा पूत मन ।
जाति-भाषा-तेज से होगा दमकता वर बदन ॥२४॥

दूर होवेगा उसी से गाँव गाँवों का तिमिर ।
खुल पड़ेगी हिन्दुओं की बंद होती आँख फिर ॥
तम-भरे उर में जगेगी ज्योति भी अति ही रुचिर ।
वह सुनेगी बात सब, जो जाति है कब की बधिर ॥
दूर होगी नागरी के शीश की सारी बला ।
चौगुनी चमकेगी उसकी चारुता-मंडित कला ॥२५॥

दैनिकों के वास्ते हैं आज दिन लाले पड़े ।
सैकड़ों दैनिक लिये तब लोग होवेंगे खड़े ॥

केतु होंगे नागरी की कीर्ति के सुन्दर बड़े।
जगमगायेंगे विभूषण अंग में रत्नों जड़े॥
देश-भाषा-रूप से वह जायगी उस दिन बरी।
सब सगी बहनें बनायेंगी उसे निज सिर-धरी॥२६॥

मैं नहीं सकटेरियन हूँ औ नहीं हूँ बावला।
बात गढ़ कर मैं किसी को चाहता हूँ कब छला॥
मैं न हूँ उरदू-विरोधी, मैं न हूँ उससे जला।
कौन हिन्दू चाहता है घोंटना उसका गला॥
निज पड़ोसी का बुरा कर कौन है फूला फला।
हैं इसी से चाहते हम आज भी उसका भला॥२७॥

किन्तु रह सकता नहीं यह बात बतलाये बिना।
ज्यों न जीयेगा कभी जापान जापानी बिना॥
ज्यों न जीयेगा मुसल्माँ पारसी, अरबी बिना।
जी सकोगे हिन्दुओ, त्योंही न तुम हिन्दी बिना॥
देख कर उरदू-कुतुब यह दीजिये मुझ को बता।
आप की जातीयता का है कहाँ उस में पता?॥२८॥

क्या गुलाबों पर करेंगे आप कमलों को निसार।
क्या करेंगे कोकिलों को छोड़कर बुलबुल को प्यार॥
क्या रसालों को सरो शमशाद पर देवेंगे वार।
क्या लखेंगे हिन्द में ईरान का मौसिम बहार॥

क्या हिरासे और दजला आदि से होगी तरी।
तज हिमालय सा सुगिरिवर पूत-सलिला सुरसरी ॥२६॥

भीम, अर्जुन की जगह पर गेव रुस्तम को बिठा।
सभ्य लोगों में नहीं दृग आप सकते हैं उठा॥
साथ कैकाऊस-दारा-प्रेम की गाँठें गठा।
क्या भला होगा, रसातल भोज, विक्रम को पठा॥
कर्ण को ऊँची जगह जो हाथ हातिम के चढ़ी।
तो समझिये, ढह पड़ेगी आप की गौरव-गढ़ी ॥३०॥

क्या हसन की मसनवी से आप होकर मुग्ध मन।
फेंक देंगे हाथ से वह दिव्य रामायन रतन॥
क्या हटाकर सूर-तुलसी-मुख-सरोरुह से नयन।
आप अवलोकन करेंगे मीर ग़ालिब का बदन॥
क्या सुधा को छोड़कर जो है मयंक-मुखों-स्रवी।
आप सहबा पान करके हो सकेंगे गौरवी ॥३१॥

जो नहीं, तो देखिये जातीय भाषा का बदन।
पोंछिये, उसपर लगे हैं जो बहुत से धूलिकन॥
जी लगाकर कीजिये उसकी भलाई का जतन।
पूजिये उसका चरण उस पर चढ़ा न्यारे रतन॥
जगमगा जायेगी उसकी ज्योति से भारत-धरा।
आप का उद्यान-यश होगा फला फूला हरा ॥३२॥

भाग्य से ही राज उस सरकार का है आज दिन।
जो उचित आशा किसी की है नहीं करती मलिन॥
शान्त की जिसने यहाँ आकर अराजकता अगिन।
उँगलियोंपर जिसके सब उपकार हैं सकते न गिन॥
जो न ऐसा राज पाकर आप सोते से जगे।
तो कहें क्यों जाति-भाषा रंगतों में हैं रँगे॥३३॥

हे प्रभो! हिन्दू-हृदय में ज्ञान का अंकुर उगे।
हिन्द में बनकर रहें, सब काल वे सबके सगे॥
दूसरों को हानि पहुँचाये बिना औ बिन ठगे।
दूर हों सब विघ्न, बाधा, भाग हिन्दी का जगे॥
जाति भाषा के लिये जो राज-सुख को रज गिने।
बुद्ध-शंकर-भूमि कोई लाल फिर ऐसा जने॥३४॥

हिन्दी भाषा

छप्पै

पड़ने लगती है पियूष की शिर पर धारा।
हो जाता है रुचिर ज्योति मय लोचन-तारा॥
बर बिनोद की लहर हृदय में है लहराती।
कुछ बिजली सी दौड़ सब नसों में है जाती॥

आते ही मुख पर अति सुखद जिसका पावन नाम ही।
इक्कीस-कोटि-जन-पूजिता हिन्दी भाषा है वही ॥ १ ॥

जिसने जग में जन्म दिया औ पोसा, पाला।
जिसने यक यक लहू बूंद में जीवन डाला ॥
उस माता के शुचि मुख से जो भाषा सीखी।
उसके उर से लग जिसकी मधुराई चीखी ॥

जिसके तुतला कर कथन से सुधाधार घर में बही।
क्या उस भाषा का मोह कुछ हम लोगों को है नहीं ॥ २ ॥

दो सूबों के भिन्न भिन्न बोली वाले जन।
जब करते हैं खिन्न बने, मुख भर अवलोकन ॥
जो भाषा उस समय काम उनके है आती।
जो समस्त भारत भू में है समझी जाती।

उस अति सरला उपयोगिनी हिन्दी भाषा के लिये।
हम में कितने हैं जिन्होंने तन मन धन अर्पण किये ॥ ३ ॥

गुरु गोरख ने योग साधकर जिसे जगाया।
औ कबीर ने जिसमें अनहद नाद सुनाया ॥
प्रेम रंग में रँगी भक्ति के रस में सानी।
जिस में है श्रीगुरु नानक की पावन बानी ॥

हैं जिस भाषा से ज्ञान मय आदि ग्रंथसाहब भरे।
क्या उचित नहीं है जो उसे निज सर आँखो पर धरे ॥ ४ ॥

करामात जिसमें है चंद-कला दिखलाती।
जिसमें है मैथिल-कोकिल-काकली सुनाती॥
सूरदास ने जिसे सुधामय कर सरसाया।
तुलसी ने जिसमें सुर-पादप फलद लगाया॥
जिसमें जग पावन पूत तम रामचरित मानस बना।
क्या परम प्रेम से चाहिये उसे न प्रति दिन पूजना॥ ५॥

बहुत बड़ा, अति दिव्य, अलौकिक, परम मनोहर।
दशम ग्रंथ साहब समान बर ग्रंथ बिरच्च कर॥
श्रीकलँगीधर ने जिसमें निज कला दिखाई।
जिसमें अपनी जगत चकित कर ज्योति जगाई॥
वह हिन्दी भाषा दिव्यता-खनि अमूल्य मणियों भरी।
क्या हो नहिं सकती है सकल भाषाओं को सिर-धरी॥ ६॥

अति अनुपम, अति दिव्य, कान्त रत्नोंकी माला।
कवि केशवने कलित-कंठ में जिसके डाला॥
पुलक चढ़ाये कुसुम बड़े कमनीय मनोहर।
देव बिहारी ने जिसके युग कमल पगों पर॥
आँख खुले पर वह भला लगेगी न प्यारी किसे।
जगमगा रही है जो किसी भारतेन्दु की ज्योति से॥ ७॥

वैष्णव कवि-कुल-मुख-प्रसूत आमोद-विधाता।
जिसमें है अति सरस स्वर्ग-संगीत सुनाता॥

भरा देशहित से था जिसके कर का तूँबा।
गिरी जाति के नयन-सलिल में था जो डूबा॥
वह दयानन्द नव-युग-जनक जिसका उन्नायक रहा।
उस भाषा का गौरव कभी क्या जा सकता है कहा!॥ ८॥

महाराज रघुराज राज-विभवों में रहते।
थे जिसके अनुराग-तरंगों ही में बहते॥
राजविभव पर लात मार हो परम उदासी।
थे जिसके नागरी दास एकान्त उपासी॥
वह हिन्दी भाषा बहु नृपति-वृन्द-पूजिता वंदिता।
कर सकती है उन्नत किये वसुधा को आनंदिता॥ ९॥

वे भी हैं, है जिन्हें मोह, हैं तन मन अर्पक।
हैं सर आँखों पर रखने वाले, हैं पूजक॥
हैं बरता बादी, गौरव-विद, उन्नति कारी।
वे भी हैं जिनको हिन्दी लगती है प्यारी॥
पर कितने हैं, वे हैं कहाँ जिनको जी से है लगी।
हिन्दू-जनता नहिं आज भी हिन्दी के रँग में रँगी॥१०॥

एक बार नहिं बीस बार हमने हैं जोड़े।
पहले तो हिन्दू पढ़ने वाले हैं थोड़े॥
पढ़ने वालों में हैं कितने उर्दू-सेवी।
कितनों की हैं परम फलद अंग्रेजी देवी॥

कहते रुक जाता कंठ है नहिं बोला जाता यहाँ।
निज आँख उठाकर देखिये हिन्दी-प्रेमी हैं कहाँ ? ॥११॥

अपनी आँखें बन्द नहीं मैंने कर ली हैं।
वे कन्दीलें लखीं जो तिमिर बीच बली हैं॥
है हिन्दी-आलोक पड़ा पंजाब-धरा पर।
उससे उज्वल हुआ राज्य इन्दौर, ग्वालिअर॥
आलोकित उससे हो चली राज-स्थान-बसुंधरा।
उसका बिहार में देखता हूँ फहराता फरहरा ॥१२॥

मध्य-हिन्द में भी है हिन्दी पूजी जाती।
उसकी है बुन्देल-खंड में प्रभा दिखाती॥
वे माई के लाल नहीं मुझ को भूले हैं।
सूखे सर में जो सरोज के से फूले हैं॥
कितनी ही आँखें हैं लगी जिन पर आकुलता-सहित।
है जिनके सौरभ रुचिर से सब हिन्दी-जग सौरभित ॥१३॥

है हिन्दी साहित्य समुन्नत होता जाता।
है उसका नूतन विभाग भी सुफल फलाता॥
निकल नवल सम्बाद-पत्र चित हैं उमगाते।
नव नव मासिक मेगज़ीन हैं मुग्ध बनाते।
कुछ जगह न्याय-प्रियतादि भी खुलकर हिन्दी हित लड़ीं।
कुछ अन्य प्रान्त के सुजन की आँखें भी उस पर पड़ीं ॥१४॥

किन्तु कहूँगा अब तक काम हुआ है जितना।
वह है किसी सरोवर के कुछ बूँदों इतना॥
जो शाला, कल्पना-नयन सामने खड़ी है।
अब तक तो उसकी केवल नींव ही पड़ी है॥
अब तक उसका कलका कढ़ा लघुतम अंकुर ही पला।
हम हैं बिलोकना चाहते जिस तरु को फूला फला॥१५॥

बहुत बड़ा पंजाब औ यहां का हिन्दू-दल।
है पकड़े चल रहा आज भी उरदू-आँचल॥
गति, मति उसकी वही जीवनाधार वही है।
उसके उर-तंत्री का ध्वनि मय तार वही है॥
वह रीझ रीझ उसके बदन की है कान्ति विलोकता।
फूटी आँखों से भी नहीं हिन्दी को अवलोकता॥१६॥

मुख से है जातीयता मधुर राग सुनाता।
पर वह है सोहराव और रुस्तम गुण गाता॥
उमग उमग है देश-प्रेमकी बातें करता।
पर पारस के गुल बुलबुल का है दम भरता।
हम कैसे कहें उसे नहीं हिन्दू-हित की लौ लगी।
पर विजातीयता-रंग में है उसकी निजता रँगी॥१७॥

भाषा द्वारा ही विचार हैं उर में आते।
वे ही हैं नव नव भावों की नींव जमाते॥

जिस भाषा में विजातीय भाव ही भरे हैं।
उसमें फँस जातीय भाव कब रहे हरे हैं॥
है विजातीय भाव ही का हरा भरा पादप जहाँ।
जातीय भाव अंकुरित हो कैसे उलहेगा वहाँ॥१८॥

इन सूबों में ऐसे हिन्दू भी अवलोके।
जिनकी रुचि प्रतिकूल नहीं रुकती है रोके॥
वे होमर, इलियड का पद्य-समूह पढ़ेंगे।
टेनिसन की कविता कहने में उमग बढ़ेंगे॥
पर जिसमें धारायें बिमल हिन्दू-जीवन की बहीं।
वह कविता तुलसी सूर की मुख पर आती तक नहीं॥१९॥

मैं पर-भाषा पढ़ने का हूँ नहीं विरोधी।
चाहिये हो मति निज भाषा भावुकता शोधी॥
जहाँ बिलसती हो निज भाषा-रुचि हरियाली।
वहीं खिलेगी पर-भाषा-प्रियता कुछ लाली॥
जातीय भाव बहु सुमन-मय है वर उर उपवन वही।
हों विजातीय कुछ भाव के जिसमें कतिपय कुसुम ही॥२०॥

है उरके जातीय भाव को वही जगाती।
निज गौरव-ममता-अंकुर है वही उगाती॥
नस नसमें है नई जीवनी शक्ति उभरती।
उस से ही है लहू बूँद में बिजली भरती॥

कुम्हलाती उन्नति-लता को सींच सींच है पालती।
है जीव जाति निर्जीव में निज भाषा ही डालती ॥२१॥

उस में ही है जड़ी जाति-रोगों की मिलती।
उस से ही है रुचिर चाँदनी तम में खिलती॥
उस में ही है विपुल पूर्वतन-बुध-जन-संचित।
रत्न-राजि कमनीय जाति-गत-भावों अंकित॥
कब निज पद पाता है मनुज निजता पहचाने बिना।
नहिं जाती जड़ता जाति की निज भाषा जाने बिना ॥२२॥

गाकर जिनका चरित जाति है जीवन पाती।
है जिनका इतिहास जाति की प्यारी थाती॥
जिनका पूत प्रसंग जाति-हित का है पाता।
जिनका बर गुण बीरतादि है गौरव-दाता॥
उनकी सुमूर्ति महिमामयी बंदनीय विरदावली।
निज भाषा ही के अंक में अंकित आती है चली ॥२३॥

उस निज भाषा परम फलद की ममता तज कर।
रह सकती है कौन जाति जीती धरती पर॥
देखी गई न जाति-लता वह पुलकित किंचित।
जो निज-भाषा-प्रेम-सलिल से हुई न सिंचित॥
कैसे निज सोये भाग को कोई सकता है जगा।
जो निज भाषा अनुराग का अंकुर नहिं उर में उगा ॥२४॥

हे प्रभु अपना प्रकृत रूप सब ही पहचाने।
निज गौरव जातीय भाव को सब सनमाने॥
तम में डूबा उर भी आभा न्यारी पावे।
खुलें बन्द आँखें औ भूला पथ पर आवे॥
निज भाषा के अनुराग की बीणा घर घर में बजे।
जीवन कामुक जन सब तजे पर न कभी निजता तजे॥२५॥

— ❀ —

उद्बोधन

द्विपद

सज्जनो ! देखिये, निज काम बनाना होगा।
जाति-भाषा के लिये योग कमाना होगा॥१॥
सामने आके उमग कर के बड़े बीरों लौं।
मान हिन्दी का बढ़ा आन निभाना होगा॥२॥
है कठिन कुछ नहीं कठिनाइयाँ करेंगी क्या।
फूँक से हमको बलाओं को उड़ाना होगा॥३॥
सामने आये हमारे जो रुकावट का पहाड़।
खोदकर उसको भी मिट्टी में मिलाना होगा॥४॥
उलझनों का जो पड़े राह में बारिधि कोई।
तेज कुंभज सा हमें काम में लाना होगा॥५॥

मेंहदियों की तरह पिस जाँय भले ही लेकिन।
रंग अपना तो हमें खुल के दिखाना होगा ॥ ६ ॥
क्यों न इस राह में नुच जाँय या कुचले जावें।
दूब की भाँति पनप कर के जम आना होगा ॥ ७ ॥
जो इसी धुन में ही मिल जाँय कभी मिट्टी में।
उग के बीजों की तरह सर को उठाना होगा ॥ ८ ॥
भगवे कपड़ों से नहीं काम चलेगा प्यारे।
देश-हित-रंग में कपड़ों को रँगाना होगा ॥ ९ ॥
स्वर्ग औ मुक्ति के झगड़ों से किनारे रह कर।
जाति-सेवा ही में सब जन्म बिताना होगा ॥१०॥
निज नई पौध की उर-भू में बड़ी ही रुचि से।
कर्म्म अनुराग का बर वृक्ष लगाना होगा ॥११॥
जिन उरों में है घिरा पर-भाषा-ममता-तम।
दीप वाँ नागरी-प्रियता का जलाना होगा ॥१२॥
ऐसा कर करके सदा आप फलें, फूलेंगे।
ईश की होगी दया, जग में ठिकाना होगा ॥१३॥

अभिनव कला

षट् पद

प्यार के साथ सुधाधार पिलाने वाली ।
जी-कली भाव विविध संग खिलाने वाली ॥
नागरी-बेलि नवल सींच जिलाने वाली ।
नीरसों मध्य सरसतादि मिलाने वाली ॥
देख लो फिर उगी साहित्य-गगन कर उजला ।
अति कलित कान्तिमती चारु हरीचन्द कला ॥ १ ॥

जो रहा मंजु मधुप नागरी-कमल-पग का ।
जो रहा मत्त पथिक-प्रेम के रुचिर मग का ॥
जो रहा बन्धु सदय भाव-सहित सब जग का ।
जो रहा रक्त गरम जाति की निबल रग का ॥
थी जिसे बुद्धि मिली पूत रसिकतादि बलित ।
है उसी उक्ति-सरसि-कंज की यह कीर्ति कलित ॥ २ ॥

देखिये आप इसे प्यार भरी आँखों से ।
दीजिये मान दिला आप इसे लाखों से ॥
आप पावेंगे इसे मिष्ट अधिक दाखों से ।
आप देखेंगे दमकता इसे सित पाखों से ॥

यह लसायेगी उरों बीच सुधा-पूरित सर।
यह सुनायेगी स अनुराग अलौकिक पिक-स्वर ॥ ३ ॥

है जिसे सूझ मिली कान्ति मनोहर प्यारी।
पा गया जो है बड़े पुण्य से प्रतिभा न्यारी ॥
कैसा होता है कथन उसका मधुर रुचि-कारी।
कितनी होती है खिली उसकी सुकविता-क्यारी ॥

जानना चाहें अगर यह रहस्य पुलकित कर।
तो पढ़ें आप इसे कंजकरों में लेकर ॥ ४ ॥

स्वर्ग-संगीत सरस आठ पहर है होता।
इस में बहता है महामोद का सुन्दर सोता ॥
बीज हितकारिता इसका है बर बरन बोता।
ताप जीका है मधुर बोलना इसका खोता ॥

चौगुनी चाप पुरन्दर से हुई जिसकी छटा।
इस में दिखलायेगी वह मुग्धकरी कान्त घटा ॥ ५ ॥

खींच देवेगी रुचिर चित्र यह दृगों आगे।
आर्य्य-गौरव का, अमर वृन्द जिसमें अनुरागे ॥
छू जिसे कान्ति सने बादले बने धागे।
तेज से जिसके तिमिर देश देश के भागे ॥

ज्योति वह जिसके विमल अंक से उफन निकली।
कान्त कंदील जगत सभ्यता की जिससे बली ॥ ६ ॥

यह सुना जाति-व्यथा आप को जगा देगी।
देश-हित-बीज हृदय-भूमि में उगा देगी।
धर्म्म का मर्म्म बता मूढ़ता भगा देगी।
लोक-सेवा में बड़े प्यार से लगा देगी।
यह मलिन बुद्धि परम पूत बना लेवेगी।
बन्द होती हुई उर-आंख खोल देवेगी॥ ७॥

कंटकों मध्य खिला फूल है चुना जाता।
कीच के बीच पड़ा रत्न है उठा आता।
बाहरी रूप जो इस का न भव्य दिखलाता।
था उचित तो भी इसे यह प्रदेश अपनाता।
किन्तु यह आज बदल रूप रंग आई है।
मान अब भी न मिले तो बड़ी कचाई है॥ ८॥

आज जो बंग-धरा बीच जन्म यह पाती।
मरहठी गुजरी भाषा में जो लिखी जाती।
मान पा हाथ में लाखों जनों के दिखलाती।
बन गई होती विबुध वृन्द की प्यारी थाती।
लोग कर ब्योंत बड़े चाव से इसे लेते।
बात ही में नहीं जी में इसे जगह देते॥ ६॥

जो कहीं भूल गया नागरी परम नेही।
प्रेम हिन्दी का न हो तो वृथा बने देही।

त्याग स्वीकार करें या बने रहें गेही।
जाति ममता है जिन्हें धन्य हैं यहाँ वे ही।
वर विभव, मान, विमल कीर्ति, वही पावेंगे।
जाति-भाषा को ललक जो गले लगावेंगे ॥१०॥

उलहना

षट्पद

वही हैं मिटा देते कितने कसाले।
वही हैं बड़ों की बड़ाई सम्हाले।
वही हैं बड़े औ भले नाम वाले।
वही हैं अँधेरे घरों के उँजाले।
सभी जिनकी करतूत होती है ढब की।
जो सुनते हैं, बातें ठिकाने की सब की ॥ १ ॥

बिगड़ती हुई बात वे हैं बनाते।
धधकती हुई आग वे हैं बुझाते।
बहकतों को वे हैं ठिकाने लगाते।
जो ऐंठे हैं उनको भी वे हैं मनाते।
कुछ ऐसी दवा हाथ उनके है आई।
कि धुल जाती है जिस्से जी की भी काई ॥ २ ॥

भलाई को वे हैं बहुत प्यार करते।
खरी बात सुनने से वे हैं न डरते।
कभी वाजिबी बात से हैं न टरते।
सचाई का दम बेधड़क वे हैं भरते।
वे बारीकियों में भी हैं पैठ जाते।
बहुत डूब वे तह की मिट्टी हैं लाते॥ ३॥

नहीं करते वे देश-हित से किनारा।
नहीं मिलता अनबन को उनसे सहारा।
बड़ी धुन से बजता है उनका दुतारा।
सुनाता है जो मेल का राग प्यारा।
नहीं नेकियाँ वे किसी की भुलाते।
नहीं फूट की आग वे हैं जलाते॥ ४॥

जो कुढ़ता है जी तो उसे हैं मनाते।
जो उलझन हुई तो उसे हैं मिटाते।
जो हठ आ पड़ा तो उसे हैं दबाते।
किसीके बतोलों में वे हैं न आते।
सदा उनको होती है रंगत निराली।
बनी रहती है उनके मुखड़े की लाली॥ ५॥

यही सोच पे उर्दू के जाँ निसारो।
कहूँगी मैं कुछ लो सुनो औ विचारो।

तुम्हारी ही मैं हूँ मुझे मत बिसारो।
मैं हिन्दी हूँ मुझको न जी से उतारो।
नहीं कोसने या झगड़ने हूँ आई।
सहमते हुए मैं उलहना हूँ लाई ॥ ६ ॥

मुझे बात यह आज कल है सुनाती।
ज़बा हूँ न मैं औ न हूँ प्यारी थाती।
गँवारी हूँ मैं और हूँ अनसुहाती।
पढ़ों को है मेरी गठन तक न भाती।
मैं खूखी हूँ जीती हूँ करके बहाने।
नहीं एक भी कल है मेरी ठिकाने ॥ ७ ॥

तनिक जो समझ बूझ से काम लेंगे।
तनिक आँख जो और ऊँची करेंगे।
सम्हल कर सचाई को जो राह देंगे।
मैं कहती हूँ तो आप ही यह कहेंगे।
कभी है न वाजिब मुझे ऐसा कहना।
भला है नहीं मुझ से यों बिगड़े रहना ॥ ८ ॥

जिसे मैंने देहली में जन कर जिलाया।
जिसे लखनऊ ला अनोखी बनाया।
जिसे लाड़ से पाला, पोसा, खेलाया।
हिलाया मिलाया, कलेजे लगाया।

हमें आप मानें जो नाते उसी के।
तो फिर यों फफोले न फोड़ेंगे जी के ॥ ९ ॥

हमीं से है उरदू का जग में पसारा।
हमीं से है उसका बना नाम प्यारा।
हमीं से है उसका रहा रंग न्यारा।
हमी से है उसका चमकता सितारा।
उसी दिन उसे पारसी जग कहेगा।
न जिस दिन हमारा सहारा रहेगा ॥ १० ॥

भला मैंने उरदू का क्या है बिगाड़ा।
बता दीजिये कब बनी उसका टाड़ा।
बसा उसका घर मैंने कब है उजाड़ा।
कहाँ कब जमा पाँव उसका उखाड़ा।
खुले जी से उसके सदा काम आई।
कभी मैंने उसको न समझा पराई ॥ ११ ॥

बरहमन के बेटे बड़े मन सुहाते।
नसीम औ रतन नाथ, जिनसे थे नाते।
जो वे मुझमें थे पारसीपन खपाते।
रहे मुझमें जो उसके जुमले मिलाते।
तो उनको नहीं मैंने छड़ियाँ लगाईं।
न डाटें बताईं, न आँखें दिखाईं ॥ १२ ॥

मुसल्मान हो या बहुत ऊँचा पाया।
रहीम और खुसरो ने जो जस कमाया।
मुझे मेरे ही रंग में जो दिखाया।
मुझे मेरे फूलों ही से जो सजाया।
तो मैंने न गजरे गले बीच गेरे।
नहीं फूल उनके सिरों पर बखेरे ॥१३॥

बड़े भाव से आरती कर हमारी।
खिली चाँदनी सी छटा वाली न्यारी।
जो सूर और तुलसी ने कीरत पसारी।
अमर जो हुए देव, केशव, बिहारी ॥
बड़ा जस, बहुत मान, सच्ची बड़ाई।
तो रसखान औ जाइसी ने भी पाई ॥१४॥

कहे देती हूँ बात यह मैं पुकारे।
मुसल्मान हिन्दू हैं दोनों हमारे ॥
ये दोनों ही हैं मुझको जी से भी प्यारे।
ये दोनों ही हैं मेरी आँखों के तारे ॥
नहीं इनमें कोई है मेरा बेगाना।
सदा जी से दोनों ही को मैंने माना ॥१५॥

गुसाँई ने जिसमें रमायन बनाई।
कोई पोथी जितनी न छपती दिखाई ॥

कला जिसकी है आज देशों में छाई।
घरों बीच जिसने है गंगा बहाई॥
सुनाती हूँ जिसमें मैं अपना उलहना।
सितम है उसे कोई बोली न कहना॥१६॥

जो है देश में सब जगह काम आती।
बहुत लोगों की जो है बोली कहाती॥
जो है झोपड़े से महल तक सुनाती।
गठन जिसकी है नित नये रंग लाती॥
कठिन है बिना जिसके घर में निबहना।
उसे क्या सही है गई बीती कहना॥१७॥

जिसे सूर ने दे दिया रंग न्यारा।
बड़े ढब से केशव ने जिसको सँवारा॥
बिहारी ने हीरों से जिसको सिंगारा।
पिन्हाया जिसे देव ने हार न्यारा॥
उसे अनसुहाती गँवारी बताना।
कहूँगी मैं है उलटी गङ्गा बहाना॥१८॥

बहुत राजों ने पाँव जिसका पखारा।
गले में कई हार अनमोल डाला॥
जिसे वार तन मन उन्होंने उभारा।
रही उनके जो सब सुखों का सहारा॥

कुढंगी बुरी क्यों उसे हैं बनाते।
रतन जिसमें हैं सैकड़ों जगमगाते ॥१९॥

सदा मोर का ढंग है जी लुभाता।
बहुत सादापन दाग़ का है सुहाता॥
कलाम इनका है आप लोगों को भाता।
कभी मोह लेता कभी है रिझाता॥
बता देती हूँ, है यही बात न्यारी।
बहुत उसमें होती है रंगत हमारी ॥२०॥

उमग आप उरदू को दिन दिन बढ़ावें।
उसे बेबहा मोतियों से सजावें॥
अछूते, बिछे फूल उसमें खिलावें।
उसे हार भी नौरतन का पिन्हावें॥
मैं फूली कली का बनूँगी नमूना।
कलेजा मेरा देखकर होगा दूना ॥२१॥

हरा देखकर पेड़ अपना लगाया।
भला कौन है जो न फूला समाया॥
जिसे मैंने अपना नमूना बनाया।
जिसे मैंने सौ सौ तरह से हिलाया॥
उसे देख फूली फली क्यों जलूँगी।
कलेजे लगाकर बलायें मैं लूँगी ॥२२॥

मगर आप से मुझ को इतना है कहना।
भली बात है सब से हिल मिल के रहना॥
कभी पोत का भी बहुत छोटा गहना।
उमग कर नहीं जो सकें आप पहना॥
तो कह बात लगती मुझे मत खिझावें।
न छलनी हमारा कलेजा बनावें॥२३॥

बहुत कह चुकी अब नहीं कुछ कहूँगी।
कहाँ तक बनूँ ढीठ अब चुप रहूँगी॥
सही मानिये आपकी सब सहूँगी।
मगर बात इतनी सदा ही चहूँगी॥
कभी आप झगड़ों में पड़ मत उलझिये।
नहीं मा तो धाई ही मुझ को समझिये॥२४॥

प्रभो! तू बिगड़ती हुई सब बना दे।
अँधेरे में तू ज्योति न्यारी जगा दे॥
घरों में भलाई का पौधा उगा दे।
दिलों में सचाई की धारा बहा दे॥
रहे प्यार आपस का सब ओर फैला।
किसी से किसी का न जी होवे मैला॥२५॥
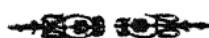
आशालता

चौपदे

कुछ उरों में एक उपजी है लता।
अति अनूठी लहलही कोमल बड़ी॥
देख कर उसको हरा जी हो गया।
वह बताई है गई जीवन-जड़ी॥ १॥

एक भाषा देशभर को दे मिला।
चाहती है आज यह भारत मही॥
मान यह हिन्दी लहेगी एक दिन।
है यही आशालता, वह लहलही॥ २॥

हैं अभी कुछ दिन हुए इसको उगे।
किन्तु उस पर हैं बहुत आँखें लगी॥
सींचिये उस को सलिल से प्यार के।
लीजिये कर कल्प-लतिका की सगी॥ ३॥

आज तक हमने बहुत सींची लता।
औ उन्होंने भी हमें पुलकित किया॥
सौरभों वाले सुमन सुन्दर खिला।
मन किसी ने सौरभित कर हर लिया॥ ४॥

फल किसीने अति सरस सुन्दर दिये।
हैं किसी में मधुमयी फलियाँ फलीं ॥
रँग बिरंगी पत्तियों में मन रमा।
छबि दिखा आँखें किसीने छीन लीं ॥ ५ ॥

इन लताओं से कहीं उपयोगिनी।
है फलद, कामद, फबीली, यह लता ॥
पी इसी का स्वाद-पूरित पूत रस।
जीविता हो जायगी जातीयता ॥ ६ ॥

मंजु सौरभ के सहज संसर्ग से।
सौरभित होगा उचित प्रियता सदन ॥
पल इसी की अति अनूठी छाँह में।
कान्त होगा एकता का बर बदन ॥ ७ ॥

जाति का सब रोग देगी दूर कर।
ओषधों की भाँति कर उपकारिता ॥
गुण-करी हित कर पवन इस की लगे।
नित सँभलती जायगी सहकारिता ॥ ८ ॥

हैं सभी आशालतायें सुखमयी।
हैं परम आधार जीवन का सभी ॥
इन सबों की रंजिनी अनुरक्तता।
त्याग सकता है नहीं मानव कभी ॥ ९ ॥

किन्तु सब आशालतायें व्यक्तिगत।
हैं न इस आशालता सी उच्चतर॥
ऐ सहृदयो जो न समझा मर्म यह।
तो सकोगे जाति मुख उज्वल न कर॥१०॥

एक विनय

छतुका

बड़े ही ढँगीले बड़े ही निराले।
अछूती सभी रंगतों बीच ढाले॥
दिलों के घरों के कुलों के उँजाले।
सुनो ऐ सुजन पूत करतूत वाले॥
तुम्हीं सब तरह हो हमारे सहारे।
तुम्हीं हो नई सूझ आँखों के तारे॥ १॥

तुम्हीं आज दिन जाति हित कर रहे हो।
हमारी कचाई कसर हर रहे हो॥
तनिक, उलझनों से नहीं डर रहे हो।
निचुड़ती नसों में लहू भर रहे हो॥
तुम्हीं ने हवा वह अनूठी बहाई।
कि यों बेलि-हिन्दी उलहती दिखाई॥ २॥

इसे देख हम हैं न फूले समाते।
मगर यह विनय प्यार से हैं सुनाते॥
तुम्हें रंग वे हैं न अब भी लुभाते।
कि जिन में रँगे क्या नहीं कर दिखाते॥
किसी लाग वाले को लगती है जैसी।
तुम्हें आज भी लौ लगी है न वैसी॥ ३॥

सुयश की ध्वजा जो सुरुचि की लड़ी है।
सुदिन चाह जिस के सहारे खड़ी है।
सभी को सदा आस जिस से बड़ी है।
सकल जाति की जो सजीवन जड़ी है॥
बहुत सी नई पौध ही वह तुम्हारी।
नहीं आज भी जा सकी है उबारी॥ ४॥

जननि-गोद ही में जिसे सीख पाया।
जिसे बोल घर में मनों को लुभाया॥
दिखा प्यार, जिसका सुरस मधु मिलाया।
उमग दूध के साथ मा ने पिलाया॥
बरन ब्योंत के साथ जिस के सुधारे।
कढ़े तोतली बोलियों के सहारे॥ ५॥

सभी जाति के लाल सुध-बुध के सँभले।
वही मा की भाषा ही पढ़ते हैं पहले॥

इसी से हुए वे न पचड़ों से पगले।
पड़े वे न दुविधा में सुविधा के बदले॥
भला किस लिये वे न फूले फलेंगे।
सुकरता सुकर जो कि पकड़े चलेंगे॥ ६॥

मगर वह नई पौध कितनी तुम्हारी।
अभी आज भी हो रही है दुखारी॥
लदा बोझ ही है सिरों पर न भारी।
भटकती भी है बीहड़ों में बिचारी॥
विकल हैं विजातीय भाषा के मारे।
अहह लाल सुकुमार मति वे तुमारे॥ ७॥

सुतों को, पड़ोसी मुसलमान भाई।
पढ़ायेंगे पहले न भाषा पराई॥
पड़ी जाति कोई न ऐसी दिखाई।
समझ बूझ जिसने हो निजता गँवाई॥
मगर एक ऐसे तुम्हीं हो दिखाते।
कि अब भी हो उलटी ही गंगा बहाते॥ ८॥

तुमारे सुअन प्यार के साथ पाले।
भले ही सहें क्यों न कितने कसाले॥
उन्हें क्यों सुखों के न पड़ जाँय लाले।
पड़े एक बेमेल भाषा के पाले॥

मगर हो तुम्हीं जो नहीं आँख खुलती।
नहीं किस लिये जी की काई है धुलती॥ ९॥

भला कौन लिपि नागरी सी भली है।
सरलता मृदुलता में हिन्दी ढली है॥
इसी में मिली वह निराली थली है।
सुगमता जहाँ सादगी से पली है॥
मृदुलमति किसी से न ऐसी खिलेगी।
सहज बोध भाषा न ऐसी मिलेगी॥१०॥

मगर इन दिनों तो यही है सुहाता।
रखे और के साथ ही लाल नाता॥
सदा ही कलपती रहे क्यों न माता।
मगर तुम बना दोगे उसको विमाता॥
अलिफ़ बे का सुत को रहेगा सहारा।
सुधा की कढ़े क्यों न हिन्दी से धारा॥११॥

अगर अपनी जातीयता है बचाना।
अगर चाहते हो न निजता गँवाना॥
अगर लाल को लाल ही है बनाना।
अगर अपने मुंह में है चंदन लगाना॥
सदा तो मृदुल बाल मति को सँभालो।
उसे वेलि हिन्दी-बिटप की बनालो॥१२॥

समय पर न कोई प्रभो चूक पावे।
भली कामना बेलि ही लहलहावे॥
विकसती हृदय की कली दब न जावे।
स्वभाषा सभी को प्रफुल्लित बनावे॥
खिले फूल जैसे सभी के दुलारे।
फलें और फूलें बनें सब के प्यारे॥१३॥

वक्तव्य

पयार

मति मान-सरोवर मंजुल मराल।
संभावित समुदाय सभासद वृन्द॥
भाव कमनीय कंज परम प्रेमिक।
नव नव रस लुब्ध भावुक मिलिन्द॥१॥
कृपा कर कहें बर बदनारबिन्द।
अनिन्दित छबि धाम नव कलेवर॥
बासंतिक लता तरु विकच कुसुम।
कलित ललित कुंज कल कण्ठ स्वर॥२॥
क्यों बिमुग्ध करते हैं मानव मानस।
मनोहरता है मिली क्यों उन्हें अपार॥

विलसित कहाँ नहीं लोकोत्तर कान्ति।
मुग्धता नहीं है कहाँ पर मूर्तिमान ॥ ८ ॥
कर सका जो प्रवेश रस-स्रोत मध्य।
अवलोक सका जो कि लालित्य ललाम ॥
जो जन विमुग्ध बना मुग्धता बिबश।
धरातल में है हुआ वही लब्ध काम ॥ ९ ॥
जान सका जितना हो जो यह रहस्य।
वह उतना ही हुआ प्रेम-पय-सिक्त ॥
उतना ही चित्त हुआ उसका अमल।
वह उतना ही हुआ रस-अभिषिक्त ॥ १० ॥
होगा वही निज देश पूत प्रेम मत्त।
होगा वही निज जाति-अनुराग रत ॥
ग्रहण करेगा वही स्वतंत्रता-मंत्र।
साधन करेगा वही स्वाधीनता-व्रत ॥ ११ ॥
मानस मुकुर मध्य उसी के, समस्त—
रहस्य प्रति फलित होगा यथोचित।
उसी का पुनीत मन करेगा मनन।
यथा तथ्य मननीय प्रसंग अमित ॥ १२ ॥
हो सकेगा वही देश-दुख से दुखित।
हो सकेगा वही जाति-हित में निरत ॥

उसी का बिचार होगा उन्नत उदार।
लोक हित रत होगा वही अबिरत ॥१३॥
आत्म त्याग ब्रत ब्रती अचल अटल।
वही होगा धीर बीर पावन चरित ॥
सरल बिशाल उर उन्नत स्वभाव।
वही होगा अति पूत भाव से भरित ॥१४॥
होवेगा मधुर तर उसका कथन।
सरस सओज शुचि महा मुग्धकर ॥
होती है उसी में वह संजीवनी शक्ति।
पाके जिसे जाति बने अजर अमर ॥१५॥
पाकर उसी से जग प्रथित विभूति।
होते हैं सओज ओज-रहित सकल ॥
तेजःपुंज कलेवर परम निस्तेज।
सजीव निर्जीव तथा सबल अबल ॥१६॥
उसी के प्रभाव से हैं प्रभावित वेद।
सकल उपनिषद् आगम अखिल ॥
भवताप तप्त हित वही है जलद।
वही है पातक पंक पावन सलिल ॥१७॥
पुनीत महाभारत तथा रामायण।
उसी की विमल कीर्ति के हैं वर केतु ॥

पा जिसे जातीयता है आज भी जीवित।
गौरव सरित वर के हैं जो कि सेतु ॥१८॥
ए पुनीत ग्रंथ सब हैं महा महिम।
सार्वभौमता के ए हैं प्रबल प्रमाण ॥
हैं हमारी सभ्यता के सर्वोत्तम चिन्ह।
हैं हमारी दिव्यता के दिव्यतम प्राण ॥१९॥
ए हैं वह अलौकिक प्रभामय मणि।
जिस की प्रभा से हुआ जग प्रभावान ॥
उन्हीं के किरण जाल से हो समुज्वल।
तिमिर रहित हुए तमोमय स्थान ॥२०॥
ए हैं वह रमणीय रंग-स्थल जहाँ।
कर अभिनीत नव नव अभिनय ॥
पूजनीय पूर्वतन अभिनेता गण।
करते हैं मानवता पूरित हृदय ॥२१॥
आत्मबल आत्म-त्याग आदि के आदर्श।
देश-प्रेम जाति-प्रेम प्रभृति के भाव ॥
परम कौशल साथ कर प्रदर्शन।
डालते हैं चित पर अमित प्रभाव ॥२२॥
दिखला सजीव दृश्य देश समुन्नति।
सामाजिक संगठन जाति उन्नयन ॥

सूखी हुई नसें बना बना सरुधिर।
करते हैं उन्मीलित मीलित नयन ॥२३॥
अतः आज कर-बद्ध है यह विनय।
बर्तमान कबि-कुल-चरण समीप ॥
तिरोहित क्यों न किया जाय देश-तम।
प्रज्वलित कर अति उज्वल प्रदीप ॥२४॥
प्राप्त क्यों न किया जाय बहुमूल्य रत्न।
मंथन सदैव कर भव-पारावार ॥
क्यों न किया जाय कल कुसुम चयन।
प्राकृतिक नन्दन कानन में पधार ॥२५॥
बात यह सत्य है कि सकल महर्षि।
व्यास देव तथा पूज्य बालमीक पद ॥
है बहुत गुरु, अति उच्च, पूततम।
पद पद पर वह है विमुक्ति प्रद ॥२६॥
किन्तु आप भी हैं उन्हीं के तो बंशधर।
रुधिर उन्हीं का आप में है संचरित ॥
उन्हीं का प्रभाव मय वैद्युतिक कण।
भवदीय भाव मध्य क्या नहीं भरित ॥२७॥
भला फिर होगा कौन कार्य्य असंभव।
कैसे न करेंगे फिर असाध्य साधन ॥

करेंगे प्रवेश क्यों न भाव-राज्य मध्य।
भक्ति साथ भारती का कर आराधन ॥२८॥
कालिदास भवभूति आदि महा कबि।
पदानुसरण कर जिनका सप्रेम ॥
ख्यात हुये, कल्पतरु पग वह पूज।
बाँछित लहेंगे क्यों न, होगा क्यों न क्षेम ॥२९॥
इसी पग-कल्पतरु-छाया में बिराज।
गोस्वामि प्रवर ने हैं बीछे वह फूल ॥
सौरभित जिससे है भारत-धरणि।
जो है अति मानस-मधुप अनुकूल ॥३०॥
फिर कैसे आप होंगे नहीं लब्ध काम।
कैसे नहीं सिद्धि प्राप्त होवेगी प्रचुर ॥
यदि होगा लोक-राग-रंजित हृदय।
यदि होगा जाति-प्रेम-सुधासिक्त उर ॥३१॥
बसुधा ललाम भूता भारत अवनि।
नवल आलोक से है आलोकित आज ॥
समुन्नति का है जहाँ तहाँ कोलाहल।
परम समाकुल है सकल समाज ॥३२॥
किन्तु आज भी है अति संकुचित दृष्टि।
यथोचित खुला नहीं आज भी नयन ॥

कंटकित पथ आज भी है कंटकित ।
किन्तु करते हैं तो भी ख-पुष्प चयन ॥३३॥
संघ शक्ति इस युग का है मुख्य धर्म ।
जाति-संगठन इस कालका है तंत्र ॥
सर्वत्र एकीकरण का है घोर नाद ।
सहयोग आज काल का है महामंत्र ॥३४॥
किन्तु हम आज भी हैं प्रतिकूल गति ।
आज भी विभिन्नता ही में हैं हम रत ॥
बची खुची रही सही जो थी संघ शक्ति ।
छिन्न भिन्न हो रही है वह भी सतत ॥३५॥
जातीय सभायें जाति जाति के समाज ।
नाना जातियों के भिन्न भिन्न पाठागार ॥
जिस भाँति संचालित हो रहे हैं आज ।
सहकारिता का कर देवेंगे संहार ॥३६॥
उनसे असहयोग पायेगा सुयोग ।
जाति संगठन पर होगा बज्रपात ॥
जातीयता का रहेगा कैसे वहाँ पक्ष ।
जहाँ पर प्रति दिन होगा पक्षपात ॥३७॥
देवालय विद्यालय सभा औ समाज ।
जाति सम्मिलन के हैं सर्वमान्य केन्द्र ॥

यदि नहीं एहो रहे अवारित द्वार।
कर न सकेंगे एकीकरण सुरेन्द्र ॥३८॥
गुथे हुए एक सूत्र में हैं जो कुसुम।
उन्हें छिन्न भिन्न कर एकाधिक बार॥
दुस्तर है, बरंच है बिडम्बना मात्र।
फिर बना लेना वैसा सुसज्जित हार ॥३९॥
किन्तु तम में हैं वे ही जो हैं ज्योतिर्मान।
नेत्र जिन के हैं खुले उन्हीं के हैं बन्द॥
कैसे दिखलावें हम व्यथित हृदय।
आह! है बड़ा ही मर्म बेधी यह द्वन्द ॥४०॥
प्रति दिन हिन्दू जाति का है होता ह्रास।
संख्या है हमारी दिन दिन होती न्यून॥
च्युत हो रहे हैं निज बर वृन्त त्याग।
अचानक कतिपय कलित प्रसून ॥४१॥
धर्म पिपासा से हो हो बहु पिपासित।
वैदिक पुनीत पथ सका कौन त्याग॥
प्रवाहित शान्ति-धारा सकेगा न कर।
भगवती भागीरथी-सलिल बिराग ॥४२॥
सामाजिक कतिपय कुत्सित नियम।
अति संकुचित छूतछात के बिचार॥

हर ले रहे हैं आज हमारा सर्वस्व।
गले का भी आज छीन ले रहे हैं हार ॥४३॥
एक ओर काम-ज्वाला में है होता हुत।
विपुल विभव तनमन मणि माल॥
अन्य ओर हो हो पेट-ज्वाला से बिबश।
लूटे जा रहे हैं मेरे बहु मूल्य लाल ॥४४॥
जिन्हें हम छूते नहीं समझ अछूत।
जो हैं माने गये सदा परम पतित॥
पास उनके है होता क्या नहीं हृदय।
वेदनाओं से वे होते क्या नहीं व्यथित ॥४५॥
उनका कलेजा क्या है पाहन गठित।
मांस ही के द्वारा वह क्या है नहीं बना॥
लांछित ताड़ित तथा हो हो निपीड़ित।
उनके नयन से है क्या न आँसू छना ॥४६॥
कब तक रहें दुख-सिंधु में पतित।
कब तक करें पग-धूलि वे वहन॥
कब तक सहें वह साँसतें सकल।
कर न सकेगा जिसे पाहन सहन ॥४७॥
हमारे ही अविवेक का है यह फल।
हमारी कुमति का है यह परिणाम॥

हमें छोड़ नित होती जाती है अलग ।
परम सहन शील संतति ललाम ॥४८॥
किन्तु आज भी न हुआ हृदय द्रवित ।
आज भी न हुआ हमें हिताहित ज्ञान ॥
छोड़ कर भयावह संकुचित भाव ।
हम नहीं बना सके हृदय महान ॥४९॥
हिन्दू जाति जरा से है आज जर्जरित ।
उसका है एक एक लोम व्यथा-मय ॥
चित-प्रकम्पित-कर रोमांच कारक ।
उसके हैं एक नहीं अनेक विषय ॥५०॥
सामने रखे जो गये विषय युगल ।
वे हैं निदर्शन मात्र; यदि कवि गण ॥
इन पर देंगे नहीं समुचित दृष्टि ।
ग्रहण करेगी जाति किस की शरण ॥५१॥
किन्तु क्या कर्तव्य किया गया है पालन ।
क्या सुनाया गया वह अद्भुत झङ्कार ॥
जिस से हृदय-यंत्र होवे निनादित ।
बज उठें चित्त-वृत्ति वर वीणा-तार ॥५२॥
जिस कवि किम्बा कवि पुंगव का चित्त ।
है न जाति दयनीय दशा चित्र पट ॥

वह हो सरस होवे भूरि भाव मय ।
संजीवनी शक्ति प्रद है न सुधा-घट ॥५३॥
काव्यता को कैसे प्राप्त होगा वह काव्य ।
जिस काव्य से न होवे जातीय उत्थान ॥
वह कविता है कभी कविता ही नहीं ।
जिस कविता में हो न जातीयता-तान ॥५४॥
जाति दुख लिखे जो न लेखनी ललक ।
तो कहूँगा रही, मुखलालिमा ही नहीं ॥
वह लेवे बार बार भले ही किलक ।
कालिमामयी की गई कालिमा ही नहीं ॥५५॥
भावुकता प्रिय कैसे बनें तो भावुक ।
भाव जो न करे जाति-अभाव प्रगट ॥
जाति-प्रेम कमनीय वंशी-ध्वनि बिना ।
होवेगा अकान्त कल्पना-कालिन्दी-तट ॥५६॥
नवरस मर्म जाना तो न जाना कुछ ।
जान पाया जब नहीं जाति का ही मर्म ॥
जाति को ही जो न सका कर्म्मरत कर ।
कवि-कर्म कैसे तब होगा कवि-कर्म ॥५७॥
जिस सुललित कला-निलय की कला ।
विलोक रहे हैं सब थल सब काल ॥

उसी सुविभूति मय के हैं सुविभूति ।
उसी मणिमाल के हैं आप लोग लाल ॥५८॥
कविगण आप में है वह दिव्य ज्योति ।
हरण करेगी जो कि जाति का तिमिर ॥
बरस सरस-सुधा करो जाति हित ।
फैलाओ दिगन्त कीर्ति परम रुचिर ॥५९॥
टले विघ्न बाधा होवे मंगल सतत ।
सब फूले फले सब ही का होवे भला ॥
सभासद सुखी रहें सभा का हो हित ।
भारत-अवनि होवे सुजला सुफला ॥६०॥
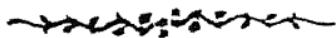
जातीयता-ज्योति

जातीयता-ज्योति

भगवती भागीरथी

छप्पै

कलित-कूल को ध्वनित बना कल-कल-ध्वनि द्वारा।
बिलस रही है विपुल-विमल-यह सुरसरि-धारा ॥
अथवा सितता-सदन सतोगुण-गरिमा सारी।
ला सुरपुर से सरि-स्वरूप में गई पसारी ॥
या भूतल में शुचिता सहित जग-पावनता है बसी।
या भूप-भगीरथ-कीर्ति की कान्त-पताका है लसी ॥ १ ॥

बूंद बूंद में वेद-वैद्युतिक-शक्ति भरी है।
आर्य-ललित-लीला-निकेत सारी-लहरी है ॥
भारतीय-सभ्यता-पीठ है पूत-किनारा।
है हिन्दू-जातीय-भाव का स्रोत-सहारा ॥
जीवन है आश्रम-धर्म का जह्नुसुता-जीवन बिमल।
है एक एक वालुका-कण भुक्ति मुक्ति का पुण्य-थल ॥ २ ॥

वैदिक-ऋषि के बर-विवेक-पादप का थाला।
बुद्धदेव के धर्म-चक्र का धुरा निराला॥
भारतीय आदर्श-विभाकर का उदयाचल।
कोटि कोटि जन भक्ति भाव वैभव का सम्बल॥
है व्यासदेव सान्तनु-सुअन से महान जन का जनक।
सुरसरि-प्रवाह है सिद्धि का साधन कल-कृति-खनि कनक॥३॥

वह हिन्दू-कुल कलित कीर्ति की कल्पलता है।
मानवता-ममता-सुमूर्ति की मंजुलता है॥
अपरिसीम-साहस-सुमेरु की है सरि-धारा।
है महान-उद्योग-देव दिवि-गौरव-दारा॥
जातीय-अलौकिक-चिन्ह है आर्य-जाति उत्फुल्लकर।
सुख्याति मालती-माल है बहु-विलसित शिव-मौलि पर॥४॥

वह अब भी है बिपुल-जीवनी-शक्ति बितरती।
रग रग में है आर्य-जाति के बिजली भरती॥
उसका जय जय तुमुलनाद है गगन विदारी।
रोम रोम में जन जन के साहस-संचारी॥
प्रति वर्ष हो मिलित है उसे जन-समूह आराधता।
इक्कीस कोटि को नाम है एक-सूत्र में बाँधता॥५॥

वह सुधि है उस आत्म-शक्ति की हमें दिलाती।
जो हरि-पद में लीन ललित-गति को है पाती॥

महि-मण्डल में ब्रह्म-कमण्डल-जल जो लाई।
शिव-शिर-विलसित वर-विभूति जिसने अपनाई।
जिसके लाये जलधार ने भारत-धरा पुनीत की।
जो धूलि-भूत बहु मनुज को पहुँचा सुरपुर में सकी ॥ ६ ॥

वह है महिमा मयी देव महिदेव समर्चित।
कुसुम-दाम-कमनीय चारु-चन्दन से चर्चित।
किन्तु सरस है एक एक रज-कण को करती।
मिल मिल कर है मलिन से मलिन का मल हरती॥
करती है कितनी अवनि को कनक-प्रसू कर रज-बहन।
दे जीवन जनहित के लिये कर विभक्त यजनीय-तन ॥ ७ ॥

है अवगत पर कहाँ हमें है महिमा अवगत।
यदि उन्नत हिन्दू-समाज होता है अवनत॥
होते घर में पतितपावनी सुरसरि-धारा।
कह अछूत हम क्यों अछूत से करें किनारा॥
कैसे न रसातल जाँयगे हित हमको प्यारा नहीं।
है छूतछात से मिल सका छिति में छुटकारा नहीं ॥ ८ ॥

पूत सदा लाखों अपूत को कर सकते हैं।
बहु-अछूत की छूतछात को हर सकते हैं॥
कभी बिछुड़तों को न छोड़ना हमको होगा।
मुँह जीवन से नहीं मोड़ना हमको होगा॥

जो समझें अपनी भूल को लाग लगे की लाग हो।
जो हमें देश का धर्म का सुरसरिका अनुराग हो॥ ९॥
क्यों गौरव का गान करें गौरव जो खोवें।
करें भक्ति क्यों जो न भक्त हम जी से होवें॥
पतित जो न हों पूत पतितपावनी कहें क्यों।
छू छू पावन सलिल अछूत अछूत रहें क्यों॥
तो कहाँ हमारी भावना भले भाव से है भरी।
जो स्वर्ग सदृश नहिं कर सकी सकल देश को सुरसरी॥१०॥

पुण्यसलिला

छप्पै

है पुनीत कल्लोल सकल कलिकलुष-विदारी।
है करती शुचि लोल लहर सुरलोक-बिहारी॥
भूरि भाव मय अभय भँवर है भवभय खोती।
अमल धवल जलराशि है समल मानस धोती॥
बहुपूत चरित विलसित पुलिन है पामरता-पुंज यम।
है विमल बालुका पाप-कुल-कदन काल-करवाल सम॥१॥
वन्दनीयतम वेद-मंत्र से है अभिमंत्रित।
आगम के गुणगान-मंच पर है आमंत्रित॥

वाल्मीक की कान्त उक्ति से है अभिनन्दित।
भारत के कविता-कलाप द्वारा है वन्दित॥
नाना-पुराण यश-गान से है महान-गौरव भरी।
सुरलोक-समागत शुचि-सलिल भूसुर-सेवित-सुरसरी॥२॥

पाहन उर से हो प्रसूत सुरधुनि की धारा।
द्रवीभूत है परम, मृदुलता-चरम-सहारा॥
रज-गुंठित हो रुचिर-रजत-सम कान्तिवती है।
असरल-गति हो सहज-सरलता-मूर्तिमती है॥
हो निम्न-गामिनी कर सकी हिमगिरि-शिर ऊंचा परम।
संगम द्वारा उसके हुआ पतित-पयोनिधि पूज्यतम॥ ३॥

व्रज-भू व्रजवल्लभ पुनीत-रस से बहु-सरसी।
है कलिन्द-नन्दिनी अंक में उस के बिलसी॥
अवध अवधपति वर-विभूति से भूतिवती बन।
सरयू उसमें हुई लीन कर के विलीन तन॥
भारत-गौरव नरदेव के गौरव से हो गौरवित।
कर सुर समान बहु असुर को अवनि लसित है सुरसरित॥४॥

जो यह भारत-धरा न सुरधुनि-धारा पाती।
सुजला सुफला शस्य-श्यामला क्यों कहलाती॥
उपवन अति-रमणीय विपिन नन्दन-बन जैसे।
कल्प-तुल्य पादप-समूह पा सकती कैसे॥

बिलसित उस में क्यों दीखते अमरावति ऐसे नगर।
जिन की विलोक महनीयता मोहित होते हैं अमर ॥ ५ ॥

है वह माता दयामयी ममता में माती।
है अतीव-अनुराग साथ पय-मधुर पिलाती ॥
भाँति भाँति के अन्न अनूठे फल है देती।
रुज भयावने निज प्रभाव से है हर लेती।
कानों में परम-विमुग्ध-कर मधुमय-ध्वनि है डालती।
कई कोटि संतान को प्रतिदिन है प्रतिपालती ॥ ६ ॥

भूतनाथ किस भाँति भवानी-पति कहलाते।
पामर-परम, पुनीत-अमर-पद कैसे पाते ॥
आर्य-भूमि में आर्य-कीर्ति-धारा क्यों बहती।
तीर्थराजता तीर्थराज में कैसे रहती ॥
क्यों सती के सदृश दूसरी दुहिता पाता हिम अचल।
क्यों कमला के बदले जलधि पाता हरिपद कमलजल ॥ ७ ॥

राजा हो या रंक अंक में सब को लेगी।
चींटी को भी नीर चतुर्मुख के सम देगी ॥
काँटों से हो भरी कुसुम-कुल की हो थाती।
सभी भूमि पर सुधातुल्य है सुधा बहाती ॥
जीते हैं जीवन-दायिनी अमर बनाती है मरे।
जो तरे न तारे और के वे सुरसरि तारे तरे ॥ ८ ॥

चतुरानन ने उसे चतुरता से अपनाया।
पंचानन ने शिर पर आदर सहित चढ़ाया॥
सहस-नयन के सहस-नयन में रही समाई।
लाखों मुख से गई गुणावलि उसकी गाई॥
कर मुक्ति-कामना कूल पर कई कोटि मानव मरे।
पीपी उसका पावन-सलिल अमित-अपावन हैं तरे॥ ९॥

फैली हिमगिरि से समुद्र तक सुरसरि धारा।
काम हमारा सदा साध सकती है सारा॥
विपुल अमानव को वह मानव कर लेवेगी।
जीवित जाति समान सबल जीवन देवेगी॥
जो बल हो बुद्धि विवेक हो वैभव हो विश्वास हो।
तो क्यों न बनें सुरतुल्य हम क्यों न स्वर्ग आवास हो॥१०॥

—❀—

गौरव गान

छप्पै

वैदिकता-विधि-पूत-वेदिका वन्दनीय-बलि।
वेद-विकच-अरविन्द, मंत्र-मकरन्द मत्त-अलि॥
आर्य-भाव कमनीय-रत्न के अनुपम-आकर।
विविध-अंध-विश्वास तिमिर के विदित-विभाकर॥

नाना-विरोध-वारिद-पवन कदाचार-कानन-दहन ।
हैं निरानन्द तरु-वृन्द के दयानन्द-आनन्द-घन ॥ १ ॥

वैदिक-धर्म न है प्रदीप जो दीप्ति गँवावे ।
तर्क-वितर्क-विवाद-वायु बह जिसे बुझावे ॥
मलिन-विचार-कलंक-कलंकित है न कलाधर ।
प्रभाहीन कर सके जिसे उपधर्म प्रभाकर ॥
वह है दिवि-दुर्लभ दिव्यमणि दुरित-तिमिर है खो रहा ।
उस के द्वारा भू-वलय है विपुल-विभूषित हो रहा ॥ २ ॥

पंचभूत से अधिक भूतियुत है विभु-सत्ता ।
प्रभु प्रभाव से है प्रभाव मय पत्ता पत्ता ॥
है त्रिलोक में कला अलौकिक-कला दिखाती ।
सकल ज्ञान विज्ञान विभव है भव की थाती ॥
उन पर समान संसार के मानव का अधिकार है ।
महि-धर्म-नियामक-वेद का यह महनीय-विचार है ॥ ३ ॥

बिना मुहम्मद औ मसीह मूसा के माने ।
मनुज न होगा मुक्त मनुजता महिमा जाने ॥
उनके पथके पथिक यह विपथ चल हैं कहते ।
रंग रंग से बाद तरंगों में हैं बहते ॥
पर यह वैदिक सिद्धान्त है उच्च-हिमाचल सा अचल ।
मानव पा सकता मुक्ति है बने आत्मबल से सबल ॥ ४ ॥

सत्य सत्य है, और सत्य सब काल रहेगा ।
न्याय-सिंधु का न्याय-वारि कर-न्याय बहेगा ॥
वहाँ जहाँ, हैं विमल विवेक विमलता पाते ।
होगा मानव मान एक मानवता नाते ॥
है जगतपिता सबका पिता वेद बताते हैं यही ।
प्रभु प्रभु-जन प्यारे हैं जिन्हें प्रभु के प्यारे हैं वही ॥ ५ ॥

हो वैदिक ए वेदतत्व हम को थे भूले ।
मूल त्याग हम रहे फूल फल दल ले फूले ॥
धूम धाम से रहे पेट के करते धंधे ।
युक्ति-भार से रहे उक्ति के छिलते कंधे ॥
थे बसे देश में पर न थे देश देश को जानते ।
हम मनमानी बातें रहे मनमाना कर मानते ॥ ६ ॥

कर कर बाल विवाह अबल बन थे बल खोते ।
दुखी थे न विधवों के विधवापन से होते ॥
समझ लूट का माल लूटते थे ईसाई ।
मुसलमान की मुसलमानियत थी रँग लाई ॥
हम दिन दिन थे तन-बिन रहे तन को गिनते थे न तन ।
निपतन गति थी दूनी हुई पल पल होता था पतन ॥ ७ ॥

भूल में पड़े, भूल को, समझ भूल न पाते ।
देख देख कर दुखी-जाति-दुख देख न पाते ॥

कर्म भूमि पर था न कर्म का बहता सोता।
धर्म धर्म कह धर्म-मर्म था ज्ञात न होता॥
उस काल अलौकिक लोक ने हमें अलौकिक बल दिया।
आ दयानन्द-आलोक ने आलोकित भूतल किया॥ ८॥

पिला उन्होंने दिया आत्मगौरव का प्याला।
बना उन्होंने दिया मान ममता मतवाला॥
जी में भर जातीय भाव कर सजग जगाया।
देश प्रेम के महामंत्र से मुग्ध बनाया॥
बतलाया ऐ ऋषि वंशधर है तुम में वह अतुलबल।
जो सकल सफलता दान कर करे विफल जीवन सफल॥ ९॥

वह नवयुग का जनक विविध सुविधान विधाता।
बात बात में यही बात कहता बतलाता॥
जो है जीवन चाह सजीवन तो बन जाओ।
नाना रुज से ग्रसित जाति को निरुज बनाओ॥
वे एक सूत्र में हैं बँधे जिन्हें बाँधते बेद हैं।
वे भेद भेद समझे नहीं जो मानते विभेद हैं॥१०॥

प्रति दिन हिन्दू जाति पतन गति है अधिकाती।
नित लुटते हैं लाल छिनी ललना है जाती॥
है दृग के सामने आँख की पुतली कढ़ती।
होती है ला बला बला-पुतलों को बढ़ती॥

मन्दिर हैं मिलते धूल में देवमूर्ति है टूटती।
अपनी छाती भारत-जननि कलप कलप है कूटती ॥११॥

जाग जाग कर आज भी नहीं हिन्दू जागे।
भाग भाग कर भय भयावने भूत न भागे॥
लाल लाल आँखें निकाल है काल डराता।
है नाना जंजाल जाल पर जाल बिछाता॥
है निर्बलता टाले नहीं निर्बल तन मन की टली।
खुल खुल आँखें खुलती नहीं, नहीं बात खलती खली ॥१२॥

है अनेकता प्यार एकता नहीं लुभाती।
है अनहित से प्रीति बात हित की नहिं भाती॥
रंग रहा है बिगड़ बदल हैं रंग न पाते।
है न रसा में ठौर रसातल को हैं जाते॥
हैं अन्धकार में ही पड़े अंधापन जाता नहीं।
है लहू जाति का हो रहा लहू खौल पाता नहीं ॥१३॥

क्या महिमामय वेद-मंत्र में है न महत्ता।
राम नाम में रही नाम को ही क्या सत्ता॥
क्या धँस गई धरातल में सुरधुनि की धारा।
आर्य जाति को क्या न आर्य गौरव है प्यारा॥
क्या सकल अवैदिक नीतियां वैदिकता से हैं बली।
क्या नहीं भूतहित भूति है भारत भूतल की भली ॥१४॥

सोचो सँभलो मत भूलो घर देखो भालो।
सबल बनो बल करो सब बला सिरकी टालो॥
दिखला दो है जगत विजयिनी विजय हमारी।
रग रग में है रुधिर उरग-गति-गर्व प्रहारी॥
बर कर वैदिक विरदावली वरद वेद पथ पर चलो।
सबको दो फलने फूलने और आप फूलो फलो॥१५॥

आँसू

चौपदे

बाढ़ में जो बहे न बढ़ बोले।
किसलिये तो बहुत बढ़े आँसू॥
जो कलेजा न काढ़ पाया तो।
किस लिये आँख से कढ़े आँसू॥ १॥
अड़ अगर बार बार अड़ती है।
तो रहे क्यों नहीं अड़े आँसू॥
जो निकाले न जी कसर निकली।
आँख से क्यों निकल पड़े आँसू॥ २॥
फेर में डालते हमें जो थे।
तो फिराये न क्यों फिरे आँसू॥

जो किसी आँख से गये गिर तो ।
किस लिये आँख से गिरे आँसू ॥ ३ ॥
जान जिन में है जान वाले वे ।
हैं गिराते न जी गये आँसू ॥
प्यास थी आबरू बचाने की ।
फिर अजब क्या कि पी गये आँसू ॥ ४ ॥
है उन्हें देख आग लग जाती ।
कब जलाते नहीं रहे आँसू ॥
टूटता बेतरह कलेजा है ।
फूटती आँख है बहे आँसू ॥ ५ ॥
जो सकें सींच सींच तो देवें ।
किस लिये प्यार जड़ खनें आँसू ॥
जी जलों का न जी जलायें वे ।
हैं अगर जल तो जल बनें आँसू ॥ ६ ॥
हैं छलकते उमड़ उमड़ आते ।
देख नीचा नहीं डरे आँसू ॥
आँख कैसे नहीं तरह देती ।
बेतरह आज हैं भरे आँसू ॥ ७ ॥
चाल वाले न कब चले चालें ।
चोचलों साथ चल पड़े आँसू ॥

मनचलापन दिखा दिखा अपना ।
मनचलों से मचल पड़े आँसू ॥ ८ ॥
खर खलों के मिले जलन से जल ।
आग जैसे न क्यों बले आँसू ॥
जो कि हैं जी जला रहे उनको ।
क्यों जलाते नहीं जले आँसू ॥ ९ ॥
जो उन्हें था बखेरना काँटा ।
किस लिये तो बिखर पड़े आँसू ॥
क्यों किसी आँख से निकल कर के ।
क्यों किसी आँख में गड़े आँसू ॥१०॥

आती है

चौपदे

जी न बदला न रंगतें बदलीं ।
चाल बदली नहीं दिखाती है ॥
मौत को क्यों बुला रहे हैं हम ।
क्या बला पर बला न आती है ॥ १ ॥
आँख खुल खुल खुली नहीं अब तक ।
बात खलती भी खल न पाती है ॥

है हमें देख भाल का दावा।
क्या हमें देख भाल आती है ॥ २ ॥
भूल पर भूल हो रही है क्यों।
बात क्यों भूल भूल जाती है ॥
लाज का है जहाज डूब रहा।
पर हमें लाज भी न आती है ॥ ३ ॥
बात सारी बिगड़ बिगड़ बिगड़ी।
बात मुँह से निकल न पाती है ॥
बात रहती सदा हमारी थी।
बात यह याद अब न आती है ॥ ४ ॥
छिन रहे हैं कलेजे के टुकड़े।
क्यों नहीं छरछराती छाती है ॥
कढ़ रही आँख की पुतलियाँ है।
किस लिये आँख भर न आती है ॥ ५ ॥
सब तरह की कमाई कायर की।
बीर की बे कमाई थाती है ॥
हो रही है किसी की मनभाई।
और हम को जँभाई आती है ॥ ६ ॥
रख सके बात जो नहीं अपनी।
सब जगह बात उनकी जाती है ॥

हम सहेंगे न साँसतें कैसे।
साँस रहते न साँस आती है॥ ७॥
कम न सोये बहुत रहे सोये।
जाति की आन अब जगाती है॥
टूट कर भी न नींद टूट सकी।
नींद पर नींद कैसे आती है॥ ८॥
मिल रहें मिल चलें मिलाप करें।
पर कभी मेल मौत थाती है॥
जब समय आँख फेर लेता है।
आँख जाने को आँख आती है॥ ९॥
देश का रंग रह सके जिससे।
बात रंगत-वही बनाती है॥
जो रँगी जाति रंग में होवे।
क्यों नहीं वह तरंग आती है॥१०॥
जो हमें बार बार तंग करे।
क्यों उसे दंग कर न पाती है॥
संग जो संग के लिये न बनी।
तो कभी क्यों उमंग आती है॥११॥
आँख से क्यों न वह बहे धारा।
जो दुधारा बनी दिखाती है॥

जो रुला दे रुलाने वालों को।
क्यों नहीं वह रुलाई आती है ॥१२॥
काम साधे सधा नहीं कोई।
साध पूरी न होने पाती है ॥
बेसुधे दूसरे न हैं हम से।
आज भी सुध हमें न आती है ॥१३॥
मर जिये जाति के लिये कितने।
जाति को जाति ही जिलाती है ॥
चाहिये मौत से नहीं डरना।
कब बिना मौत मौत आती है ॥१४॥
किस लिये जी लड़ा नहीं देते।
जान हित-चाह क्यों छिपाती है ॥
बात से लें न काम काम करें।
काम की बात काम आती है ॥१५॥

घर देखो भालो

लावनी

आँखें खोलो भारत के रहने वालो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो॥

यह फूट डालती फूट रहेगी कब तक।
यह छेड़ छाड़ औ छूट रहेगी कब तक॥
यह धन की जन की लूट रहेगी कब तक।
यह सूट बूट की टूट रहेगी कब तक॥
बल करो बली बन बुरी बला को टालो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो॥ १॥

क्यों छूत छात की छूत न अब तक छूटी।
क्यों टूट गई कड़ियाँ हैं अब तक टूटी॥
फूटे न आँख वह जो न आज तक फूटी।
छन छन छनती ही रहे प्रेम की बूटी॥
तज ढील, रंग में ढलो, ढंग में ढालो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो॥ २॥

हैं बौद्ध जैन औ सिक्ख हमारे प्यारे।
चित के बल कितने सुख के उचित सहारे॥
हिन्दुओं से न हैं आर्य्यसमाजी न्यारे।
हैं एक गगन के सभी चमकते तारे॥

उठ पड़ो अंक भर सब कलंक धो डालो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो ॥ ३ ॥

नाना मत हैं तो बनें हम न मतवाले।
ए एक दूध के हैं कितने ही प्याले ॥
तब मेल-जोल के पड़ें हमें क्यों लाले।
जब सब दीये हैं एक जोत ही वाले ॥
कर उजग दूर जन जन को जाग जगा लो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो ॥ ४ ॥

क्यों बात बात में बहक बिगाड़ें बातें।
क्यों हमें घेर लें किसी नीच की घातें ॥
हों भले हमारे दिवस भली हों रातें।
लानत है सहलें अगर समय की लातें ॥
धुन बाँध धूम से अपनी धाक बँधालो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो ॥ ५ ॥

क्या लहू रगों में रंग नहीं है लाता।
क्या है न कपिल गौतम कणाद से नाता ॥
क्या नहीं गीत गीता का जी उमगाता।
क्या है न मदन-मोहन का बचन रिझाता ॥
मुख लाली रख लो ऐ माई के लालो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो ॥ ६ ॥

अपने को न भूलें

लावनी

बन भोले क्यों भोले भाले कहलावें।
सब भूलें पर अपने को भूल न जावें॥

क्या अब न हमें है आन बान से नाता।
क्या कभी नहीं है चोट कलेजा खाता॥
क्या लहू आँख में उतर नहीं है आता।
क्या खून हमारा खौल नहीं है पाता॥

क्यों पिटें लुटें मर मिटें ठोकरें खावें।
सब भूलें पर अपने को भूल न जावें॥ १॥

पड़ गया हमारे लोहू पर क्यों पाला।
क्यों चला रसातल गया हौसला आला॥
है पड़ा हमें क्यों सूर बीर का ठाला।
क्यों गया सूरमापन का निकल दिवाला॥

सोचें समझें सँभलें उमंग में आवें।
सब भूलें पर अपने को भूल न जावें॥ २॥

छिन गये अछूतों के क्यों दिन दिन छीजें।
क्यों बेवों से बेहाथ हुए कर मीजें॥
क्यों पास पास वालों का कर न पसीजें।
क्यों गाल आँसुओं से अपनों के भीजें॥

उठ पड़ें अड़ें अकड़ें बच मान बचावें।
सब भूलें पर अपने को भूल न जावें ॥ ३ ॥

क्यों तरह दिये हम जाँय बेतरह लूटे।
हीरा हो कर बन जाँय कनी क्यों फूटे ॥
कोई पत्थर क्यों काँच की तरह टूटे।
क्यों हम न कूट दें उसे हमें जो कूटे ॥
आपे में रह अपनापन को न गँवावें।
सब भूलें पर अपने को भूल न जावें ॥ ४ ॥

सैकड़ों जातियों को हमने अपनाया।
लाखों लोगों को करके मेल मिलाया ॥
कितने रंगों पर अपना रंग चढ़ाया।
कितने संगों को मोम बना पिघलाया ॥
निज न्यारे गुण को गिनें गुनें अपनावें।
सब भूलें पर अपने को भूल न जावें ॥ ५ ॥

सारे मत के रगड़ों झगड़ों को छोड़ें।
नाता अपना सब मतवालों से जोड़ें ॥
काहिली कलह कोलाहल से मुँह मोड़ें।
मिल जुल मिलाप-तरु के न्यारे फल तोड़ें ॥
जग जाँय सजग हो जीवन ज्योति जगावें।
सब भूलें पर अपने को भूल न जावें ॥ ६ ॥

पूर्वगौरव

लावनी

बल में विभूति में हमें कौन था पाता।
था कभी हमारा यश वसुधातल गाता॥

फरहरा हमारा था नभ में फहराया।
सिर पर सुर पुर ने था प्रसून बरसाया॥
था रत्न हमें देता समुद्र लहराया।
था भूतल से कमनीय फूल फल पाया॥

हम सा त्रिलोक में सुखित कौन दिखलाता।
था कभी हमारा यश वसुधातल गाता॥ १॥

था एक एक पत्ता पूरा हितकारी।
रजकण से हम को मिली सफलता न्यारी॥
कंटक मय महि हो गई कुसुम की क्यारी।
बन गई हमारे लिये सुखनि खनि सारी॥

था भाग्य हमारा विधि सा भाग्य विधाता।
था कभी हमारा यश वसुधा तल गाता॥ २॥

छूते ही मिट्टी थी सोना बन जाती।
कर परस रसायन रही धूलि कर पाती॥
पाहन में पारस की सी कला दिखाती।
तिनके बनते नाना निधियों की थाती॥

गुण गौरव था गौरव मय महि का पाता।
था कभी हमारा यश वसुधा तल गाता ॥ ३ ॥

मरुधरा मध्य थे मन्दाकिनी बहाते।
थे दग्ध बनों के बर बारिद बन जाते ॥
रसहीन थलों में थे रस-स्रोत लसाते।
ऊसर समूह में थे रसाल उपजाते ॥
हम सा कमाल का पुतला कौन कहाता।
था सुयश हमारा सब वसुधातल गाता ॥ ४ ॥

हम थे अप्रीति के काल, प्रीति के प्याले।
हम थे अनीति-अरि नीति-लता के थाले ॥
हम थे सुरीति के मेरु भीति उर भाले।
हम थे प्रतीति-प्रिय प्रेम-गीति मतवाले ॥
था सदा हमारा मानस मधु बरसाता।
था सुयश हमारा सब वसुधातल गाता ॥ ५ ॥

हम धीर बीर गंभीर बताये जाते।
अभिमत फल हम से सब फल कामुक पाते ॥
सुख शान्ति सुधा धारा थे हमीं बहाते।
जगती में थे नवजीवन ज्योति जगाते ॥
नित रहा हमारा मानवता से नाता।
था सुयश हमारा सब वसुधातल गाता ॥ ६ ॥

दमदार दावे

लावनी

जो आँख हमारी ठीक ठीक खुल जावे।
तो किसे ताब है आँख हमें दिखलावे॥

है पास हमारे उन फूलों का दोना।
है महँक रहा जिनसे जग का हर कोना॥
है करतब लोहे का लोहापन खोना।
हम हैं पारस हो जिसे परसते सोना॥
जो जोत हमारी अपनी जोत जगावे।
तो किसे ताब है आँख हमें दिखलावे॥ १॥

हम उस महान जन की संतति हैं न्यारी।
है बार बार जिस ने बहु जाति उबारी॥
है लहू रगों में उन मुनिजन का जारी।
जिनकी पग रज है राज से अधिक प्यारी॥
जो तेज हमारा अपना तेज बढ़ावे।
तो किसे ताब है आँख हमें दिखलावे॥ २॥

था हमें एक मुख, पर दस-मुख को मारा।
था सहस-बाहु दो बाहों के बल हारा॥
था सहस-नयन दबता दो नयनों द्वारा।
अकले रवि सम दानव समूह संहारा॥

क्या से क्या

लावनी

क्यों आँख खोल हम लोग नहीं पाते हैं।
क्या रहे और अब क्या बनते जाते हैं॥

थे हमीं उँजाला जग में करने वाले।
थे हमीं रगों में बिजली भरने वाले॥
थे बड़े बोर के कान कतरने वाले।
थे हमीं आन पर अपनी मरने वाले॥
हम बात बात में अब मुँह की खाते हैं।
क्या रहे और अब क्या बनते जाते हैं॥ १॥

था मन उमंग से भरा, दबंग निराला।
था मेल जोल का रंग बहुत ही आला॥
था भरा लबा-लब जाति-प्यार का प्याला।
देशानुराग का जन जन था मतवाला।
ए ढंग अब हमें याद भी न आते हैं।
क्या रहे और अब क्या बनते जाते हैं॥ २॥

थे धीर बीर साहसी सूरमा पूरे।
थे लाभ किये हमने हीरों के कूरे॥
थे सुधा भरे फल देते हमें धतूरे।
छू हम को पूरे बने अनेक अधूरे॥

अब अपने घर में आग हम लगाते हैं ।
क्या रहे और अब क्या बनते जाते हैं ॥ ३ ॥

थी विजय-पताका देश देश लहराती ।
धौंसा धुकार थी घहर घहर घहराती ॥
हुंकार हमारी दसों दिशा में छाती ।
धरती-तल में थी धाक बँधी दिखलाती ॥
अब तो कपूत कायर हम कहलाते हैं ।
क्या रहे और अब क्या बनते जाते हैं ॥ ४ ॥

स्वर्गीय दमक से रहा दमकता चेहरा ।
दिल रहा हमारा देव-भाव का देहरा ॥
था फबता गौरव-हार गले में तेहरा ॥
था बँधा सुयश का शिर पर सुन्दर सेहरा ।
अब बना बना बातें जी बहलाते हैं ।
क्या रहे और अब क्या बनते जाते हैं ॥ ५ ॥

सुख-स्रोत हमारे आस पास बहते थे ।
वांछित फल हम से सकल लोक लहते थे ॥
सब हमें जगत का जीवन धन कहते थे ।
देवते हमारा मुँह तकते रहते थे ॥
अब पाँव दूसरों का हम सहलाते हैं ।
क्या रहे और अब क्या बनते जाते हैं ॥ ६ ॥

लानतान

द्विपद

गईं चोटें लगाई क्या कलेजा चोट खाता है।
कलेजा कढ़ रहा है क्या कलेजा मुँह को आता है ॥ १ ॥
हुए अंधेर कितने आज भी अंधेर हैं होते।
अंधेरा आँख पर छाया है अंधापन न जाता है ॥ २ ॥
रहा कुछ भी न परदा बेतरह हैं खुल रहे परदे।
हमारी आँख का परदा उठाये उठ न पाता है ॥ ३ ॥
हुए बदरंग, सारी रंगतें हैं धूल में मिलती।
मगर अब भी हमारा रंग-बिगड़ा रंग लाता है ॥ ४ ॥
खुलीं आँखें न खोले पुतलियाँ हैं आँख की कढ़ती।
मगर लोहू हमारी आँख से अब भी न आता है ॥ ५ ॥
न आँखें देखने पाईं न आँखों में लहू उतरा।
वही है लुट रहा जो आँख का तारा कहाता है ॥ ६ ॥
पुंछे आँसू न बेवों के न हैं वे बेबहा मोती।
बहे आँसू न वह सब जाति ही को जो बहाता है ॥ ७
घटे ही जा रहे हैं हम घटी पर है घटी होती।
लहू का घूंट पीना बेतरह हम को घटाता है ॥ ८ ॥

समय की आँख देखें आँख पहचानें समय को हम।
गिरे वे आँख से जिन को समय आँखें दिखाता है ॥ ९ ॥
सदा वे जान मरते हैं जियेंगे जान वाले ही।
गया वह, जान रहते जान अपनी जो गँवाता है ॥१०॥

प्रेम

छपदे

उमंगों भरा दिल किसी का न टूटे।
पलट जाँय पासे मगर जुग न फूटे ॥
कभी संग निज संगियों का न छूटे।
हमारा चलन घर हमारा न लूटे ॥
सगों से सगे कर न लेवें किनारा।
फटे दिल मगर घर न फूटे हमारा ॥ १ ॥

कभी प्रेम के रंग में हम रँगे थे।
उसी के अछूते रसों में पगे थे ॥
उसी के लगाये हितों में लगे थे।
सभी के हितू थे सभी के सगे थे ॥
रहे प्यार वाले उसी के सहारे।
बसा प्रेम ही आँख में था हमारे ॥ २ ॥

रहे उन दिनों फूल जैसा खिले हम।
रहे सब तरह के सुखों से हिले हम॥
मिलाये, रहे दूध जल सा मिले हम।
बनाते न थे हित हवाई किले हम॥

लबालब भरा रंगतों में निराला।
छलकता हुआ प्रेम का था पियाला॥ ३॥

रहे बादलों सा बरस रंग लाते।
रहे चाँद जैसी छटायें दिखाते॥
छिड़क चाँदनी हम रहे चैन पाते।
सदा ही रहे सोत रस का बहाते॥

कलायें दिखा कर कसाले किये कम।
उँजाला अँधेरे घरों के रहे हम॥ ४॥

रहे प्यार का रंग ऐसा चढ़ाते।
न थे जानवर जानवरपन दिखाते॥
लहू-प्यास-वाले, लहू पी न पाते।
बड़े तेज़-पंजे न पंजे चलाते॥

न था बाघपन बाघ को याद होता।
पड़े सामने साँपपन साँप खोता॥ ५॥

कसर रख न जी की कसर थी निकलती।
बला डाल कर के बला थी न टलती॥

मसल दिल किसी का, न थी, दाल गलती।
बुरे फल न थी चाह की बेलि फलती॥
न थे जाल हम तोड़ते जाल फैला।
धुले मैल फिर दिल न होता था मैला॥ ६॥

मगर अब पलट है गया रंग सारा।
बहुत बैर ने पाँव अब है पसारा॥
हमें फूट का रह गया है सहारा।
बजा हैं रहे अनबनों का नगारा॥
भँवर में पड़ी, है बहुत डगमगाती।
चलाये मगर नाव है चल न पाती॥ ७॥

हमें जाति के प्रेम से है न नाता।
कहाँ वह नहीं ठोकरें आज खाता॥
कहीं नीचपन है उसे नोच पाता।
कहीं ढोंग है नाच उसको नचाता॥
कभी पालिसी बेतरह है सताती।
कभी छेदती है बुरी छूत छाती॥ ८॥

बहुत जातियों की बहुत सी सभायें।
बनीं हिन्दुओं के लिये हैं बलायें॥
विपत, सैकड़ों पंथ मत क्यों न ढायें।
अगर एकता रंग में रँग न पायें॥

कटे चाँद अपनी कला क्यों न खोता।
गये फूट हीरा कनी क्यों न होता ॥ ९ ॥

बनाई गई चार ही जातियाँ हैं।
भलाई भरी वे भली थातियां हैं ॥
किसी एक दल की गिनी पांतियां हैं।
भरी एकता से कई छातियां हैं ॥
मगर बँट गये तंग बन तन गई हैं।
किसी कोढ़ की खाज वे बन गई हैं ॥१०॥

अगर लोग निज जाति को जाति जानें।
बनें अंग के अंग, तन को न मानें ॥
लड़ी के लिये लड़ पड़ें भौंह तानें।
न माला न मोती न लें चीन्ह खानें ॥
भला तो सदा मुँह पिटेंगे न कैसे।
कलेजे में काँटे छिटेंगे न कैसे ॥११॥

सभी जाति है राग अपना सुनाती।
उमंगों भरे है बहुत गीत गाती ॥
बना भेद, है गत अनूठे बजाती।
मगर धुन किसी की नहीं मेल खाती ॥
सभी की अलग ही सुनाती हैं तानें।
लयें बन रही हैं कुटिलता की कानें ॥१२॥

बड़े काम की बन बहुत काम आती।
सभा जो सभी जातियों को मिलाती॥
मगर आग है वह घरों में लगाती।
वही एकता का गला है दबाती॥
उसी ने बचे प्रेम को पीस डाला।
उसी ने हितों का दिवाला निकाला॥१३॥

बरहमन बड़े बाघ, छत्री छुरे हैं।
कुटिल वैस हैं, शूद्र सब से बुरे हैं॥
यही गा रहे आज बन बेसुरे हैं।
गये प्रेम के टूट सारे धुरे हैं॥
किसी से किसी का नहीं दिल मिला है।
जहाँ देखिये एक नया गुल खिला है॥१४॥

कहीं रंग में मतलबों के रँगा है।
कहीं लाभ की चाशनी में पगा है॥
कहीं छल कपट औ कहीं पर दगा है।
कहीं लाग के लाग से वह लगा है॥
कहीं प्रेम सच्चा नहीं है दिखाता।
समय नित उसे धूल में है मिलाता॥१५॥

बही प्रेम धारा पटी जा रही है।
पली बेलि हित की कटी जा रही है॥

बँधी धाक सारी घटी जा रही है।
बँची एकता नित लटी जा रही है॥
गई बे तरह मूँद कर आँख लूटी।
बला हाथ से जाति अब भी न छूटी॥१६॥

करोड़ों मुसलमान बन छोड़ बैठे।
कई लाख, नाता बहँक तोड़ बैठे॥
अहिन्दू कहा, मुँह बहुत मोड़ बैठे।
कई आज भी हैं किये होड़ बैठे॥
उबर कर उबरते नहीं हैं उबारे।
नहीं कान पर रेंगती जूं हमारे॥१७॥

अगर नाम हिन्दू हमें है न प्यारा।
गरम रह गया जो न लोहू हमारा॥
अगर आँख का है चमकता न तारा।
अगर बन्द है हो गई प्रेम-धारा॥
बहुत ही दले जाँयगे तो न कैसे।
रसातल चले जाँयगे तो न कैसे॥१८॥

मगर आँख कोई नहीं खोल पाता।
कलेजा किसी का नहीं चोट खाता॥
किसी का नहीं जी तड़पता दिखाता।
लहू आँख से है किसी के न आता॥

चमक खो, बिखर है रहा हित-सितारा।
उजड़ है रहा प्रेम-मन्दिर हमारा ॥१६॥

बहुत कह गये अब अधिक है न कहना।
बढ़ायेंगे अब हम न अपना उलहना ॥
भला है नहीं बन्द कर आँख रहना।
उसे क्यों सहें चाहिये जो न सहना ॥
मिलें खोल कर दिल दिलों को मिलायें।
जगें और जग हिन्दुओं को जगायें ॥२०॥

विविध विषय

विविध विषय

मांगलिक पद्य

दोहे

सारी बाधायें हरें राधा नयनानंद।
बृन्दारक बन्दित चरण श्री बृन्दाबन चंद ॥ १ ॥
चाव भरे चितवत खरे किये सरस दृग-कोर।
जय दुलहिन श्री राधिका दूलह नन्द-किशोर ॥ २ ॥
विबुध वृन्द आराधिता बुध सेविता त्रिकाल।
जय वीणा पुस्तकवती हंस बिलसती बाल ॥ ३ ॥
सकल मंजु मंगल सदन कदन अमंगल मूल।
एक रदन करिवर बदन सदा रहें अनुकूल ॥ ४ ॥
मंगलमय होता रहे यह मंगलमय काल।
करें अमंगल दूर सब मंगलायतन लाल ॥ ५ ॥
कु शकुन दुरें उलूक सम तज मंगलमय देश।
सकल अमंगल तम दलें द्विज-कुल-कमल-दिनेश ॥ ६ ॥

वाधित वसुधा को करे हर वाधा को अंश।
विवुध वृन्द सेवित चरण बंदनीय द्विज बंश ॥ ७ ॥
करें गौरवित जाति को कर गौरव पर गौर।
रखें लाज सिरमौर की विप्र वंश सिरमौर ॥ ८ ॥
शुचि विचार वरविधि बलित बने यह रुचिर व्याह।
कुलाचार में भी सरुचि होवे सुरुचि निबाह ॥ ९ ॥
रख अविचल दृग सामने द्विजकुल बिरद महान।
चिरजीवी हों बर वधू प्रेमसुधा कर पान ॥१०॥
पुरजन परिजन सुखित हों लहें समागत मोद।
पा अवनी कमनीयता उलहे बेलि-बिनोद ॥११॥
बसे अविकसित चित्त में अमित उमंग उछाह।
बहे अपावन हृदय में पावन प्रेम-प्रवाह ॥१२॥
विघ्न रहित बसुधा बने घर घर बढ़े उछाह।
रहें बहु सुखित बर वधू हो विनोद मय व्याह ॥१३॥
आराधन करते करें वाधायें सब दूर।
दया-सिंधु सिंधुर-बदन आरंजित सिन्दूर ॥१४॥
सुमुख सुमुखता-वायु से टले अमोद-पयोद।
विलसित-भाल मयंक से विकसे कुमुद-विनोद ॥१५॥
उमग उमग घर घर बहे परम प्रमोद प्रवाह।
मोदक-प्रिय होकर मुदित मुद मय करें विवाह ॥१६॥

विमुख विविध वाधा करें करिवर-मुख दिनरात।
दिन दिन बनती ही रहे बना बनी की बात ॥१७॥
कुशल मयी हो मेदिनी हो मंगलमय राह।
करें वरद वर वर-वधू का विनोद मय व्याह ॥१८॥

—❀—

बांछा

दोहा

बरस बरस कर रुचिर रस हरे सरसता प्यास।
असरस चित को अति सरस करे सरस पद-न्यास ॥ १ ॥
भावुक जन के भाल पर हो भावुकता खौर।
अरसिक पाकर रसिकता बने रसिक सिरमौर ॥ २ ॥
मिले मधुर स्वर्गीय स्वर हों स्वर सकल रसाल।
व्यंजन में वर व्यंजना हो व्यंजित सब काल ॥ ३ ॥
उक्ति अलौकिकता लहे मिले अलौकिक ओक।
करे समालोकित उसे अलंकार आलोक ॥ ४ ॥
कलित भाव से बलित हो पा रुचि ललित नितान्त।
कान्त करे कवितावली कविता-कामिनि-कान्त ॥ ५ ॥

जीवन

पयार

विकच कमल कमनीय कलाधर।
मंद मंद आन्दोलित मलय पवन।
तरल तरंग माला संकुल जलधि।
परम आनन्दमय नन्दन कानन ॥१॥
विपुल कुसुम कुल लसित बसंत।
विविध तारक चय खचित गगन।
कलित ललित किसलय कान्त तरु।
श्यामल जलद जाल नयन रंजन ॥२॥
कोमल आलोकमय प्रभात समय।
रवि-कर विलसित सलिल विलास।
प्रभापुंज प्रभासित काञ्चन कलस।
सुमन समूह अति सरस विकास ॥३॥
मरीचिका मय मरु विदग्ध विपिन।
प्रखर तपन ताप उत्तप्त दिवस।
भयंकर तम तोम आवरित निशि।
सलिल रहित सर महि असरस ॥४॥

राहु कवलित कलंकित कलानिधि ।
मदन दहन रत मदन-दहन ।
नभ तल निपतित तारक निचय ।
जीवन विहीन घन है जन जीवन ॥५॥
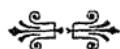
कविकीर्ति

दोहा

रचती है कविता-सुधा सुधासिक्त अवलेह ।
लहता है रससिद्ध कवि अजर अमर यश-देह ॥ १ ॥
चीरजीवी हैं सुकवि जन सब रस-सिद्ध समान ।
उक्ति सजीवन जड़ी को कर सजीवता दान ॥ २ ॥
अमल धवल आनन्द मय सुधा सिता सुमिलाप ।
है कमनीय मयंक सम कविकुल कीर्ति कलाप ॥ ३ ॥
गौरव-केतन से लसित अनुपम-रत्न उपेत ।
अमर-निकेतन तुल्य है कविकुल कीर्ति-निकेत ॥ ४ ॥
मानस-अभिनन्दन, अमर, नन्दन बन वर कुंज ।
है पावन प्रतिपत्ति मय कवि पुंगव यश पुंज ॥ ५ ॥

कवित्त

पारस समान लौह अललित मानस को
परस परस कर कंचन बनाते हैं।
नव नव रस से रसायन विविध कर
असरस उर में सरसता लसाते हैं।
हरिऔध सुधामयी कविता कलित कर
कविकुल वसुधा में सुधासी बहाते हैं।
गाकर अमरता अमर वृन्द वंदित की
लोक परलोक में अमर पद पाते हैं॥

निराला रंग

छप्पै

बनें बनायें किन्तु बिगड़ती बात बनावें।
हँसें हँसावें किन्तु हँसी अपनी न करावें॥
बहक बहँकते रहें पर न रुचि को बहँकावें।
खुल खेलें, पर खेल खोल आँखों को पावें॥
भर जाँय उमंगों में मगर बेढंगी न उमंग हो।
रंगतें रहें सब रंग की मगर निराला रंग हो॥ १॥

चतुर नेता

छप्पै

बातें रख रख बात बात में बात बनावें।
रंग बदल कर नये नये बहुरंग दिखावें॥
कर चतुराई परम-चतुर नेता कहलावें।
मीठे मीठे बचन बोल बहुधा बहलावें॥
जो करें जाति हित नाम को वहु भूखे हों नाम के।
वे बड़े काम के क्यों न हों हैं न देश के काम के॥ २॥

— ❀ —

माधुरी

द्रुतविलम्बित

अति-पुनीत-अलौकिकता भरी।
विवुध-वृन्द अतीव-बिनोदिनी॥
मधुरिमा गरिमा महिमा मयी।
कथित है महिमामय-माधुरी॥ १॥
नयन है किस का न बिमोहती।
गगन के तल की नव-नीलिमा॥
विमलता मय तारक-मालिका।
जग-विमुग्ध-करी विधु-माधुरी॥ २॥

सरसता मय है सरसा-सुधा ।
मलय-मारुत कोकिल-काकली ॥
मुकुलिता-लतिका रजनी सिता ।
कल-निनाद कलाकर-माधुरी ॥ ३ ॥

स-रव है रव से पिक-पुंज के ।
स-छबि है छबि पा तरु-तोम की ॥
सरस है सरसीरुह-वृन्द से ।
समधु है मधु-माधव-माधुरी ॥ ४ ॥

विदित है तप की तपमानता ।
सरस-पावस की उपकारिता ॥
शरद्-निर्मलता हिम-शीतता ।
शिशिर-मंजुलता मधु-माधुरी ॥ ५ ॥

बहु-प्रफुल्ल किसे करती नहीं ।
नवल-कोमल-कान्त-तृणावली ॥
ककुभ में लसिता कल-कौमुदी ।
विलसिता वसुधा-तल-माधुरी ॥ ६ ॥

कलित-कल्पलता कमनीय है ।
ललित है कर लाभ ललामता ॥
सकल केलि कला कुल कान्त है ।
बदन-मण्डल मंजुल-माधुरी ॥ ७ ॥

बिकच-पंकज मंजुल-मालती ।
कुसुम-भार-नता-नवला-लता ॥
उदित-मंजु-मयंक समान है ।
मुदित-मानव मानस-माधुरी ॥ ८ ॥

कलित है विधु-कोमल-कान्तिसी ।
मृदुल-बेलि समान मनोरमा ॥
मधुर है मधुपावलि-गान से ।
मधुमयी-कबिता-गत-माधुरी ॥ ९ ॥

मधुमती बनती बसुधा रहे ।
मधु-निकेतन मानव-चित्त हो ॥
मधुरता-मय-मानस के मिले ।
मधुरिमा-मय हो यह माधुरी ॥१०॥

—❀—

बनलता

द्रुतविलम्बित

कुसुम वे उस में विकसे रहें ।
बिकसिता जिस से सु बिभूति हो ॥
बस सदा जिन के बर-वास से ।
बन सके अनुभूति सुबासिता ॥ १ ॥

बहु-विमोहक हो छबि-माधुरी।
मिल गये अनुकूल-ललामता॥
सरसता उस की करती रहे।
सरस-मानस को अभिनन्दिता॥ २॥

सब दिनों अनुराग-समीर के।
सुपलने पर हो प्रतिपालिता॥
बहु-समादर के कर-कंज में।
वह रहे सब काल समादृता॥ ३॥

उस मनोरम-पादप-अंक में।
वह रहे लसती चित-मोहती॥
विदित है जिस की सहकारिता।
बिकचता मृदुता हितकारिता॥ ४॥

नवलता भुवि हो बर-भाव की।
मृदुलता उस की मधुसिक्त हो॥
सफलता बसुधा-तल में लहे॥
वनलता बन मंजुलता-मयी॥ ५॥

रस मिले, सरसा बन सौगुनी।
बिलस मंजु-बिलासवती बने॥

कर विमुग्ध सकी किस को नहीं।
कुसुमिता-नमिता-बनिता-लता ॥ १ ॥
यदि नहीं पग बन्दित पूज के।
अवनि में अभिनन्दित हो सकी ॥
बिफलिता तब क्यों बनती नहीं।
बनलता-कलिता-कुसुमावली ॥ २ ॥
सरसता उस में वह है कहाँ।
वह मनोहरता न उसे मिली ॥
बन सकी मुदिता बनिता नहीं।
बिकसिता लसिता बन की लता ॥ ३ ॥
विकच देख उसे बिकसी रही।
सह सकी हिम आतप साथ ही ॥
पति-परायणता-ब्रत में रता।
बनलता-तरु-अंक-विलम्बिता ॥ ४ ॥
वह सदा परहस्त-गता रही।
यह रही निजता अवलम्बिनी ॥
उपबनोपगता बनती नहीं।
बनलता बन-भू प्रतिपालिता ॥ ५ ॥
झड़ पड़ी, न रुची हित-कारिता।
यजन में न लगी यजनीय के ॥

सुमनता उसमें यदि है न तो।
बनलता-सुमनावलि है वृथा ॥ ६ ॥
कब नहीं भरता वह भाँवरें।
चित चुरा न सकी कब चारुता ॥
कब बसी अलि लोचन में न थी।
बनलता कुसुमावलि से लसी ॥ ७ ॥
विलसती वह है बस अंक में।
बिकच है बनती बन संगिनी ॥
सफलता अवलम्बन से मिली।
बनलता तरु है तव लालिता ॥ ८ ॥
उपल कोमलता प्रतिकूल है।
अशनिपात निपातन तुल्य है ॥
बरस जीवन जीवन दे उसे।
बनलता घन है तन पालिता ॥ ९ ॥
बनलता यदि है तरु-बन्दिनी।
लसित क्या दल-कोमल से हुई।
किस लिये वर-बास-सुबासिता।
कुसुमिता फलिता कलिता रही ॥ १० ॥

ललितललाम

वीर

सरस भाव मन्दार सुमन से
समधिक हो हो सौरभ धाम।
नन्दन बन अभिराम लोक
अभिनन्दन रच मानस आराम ॥
लगा लगा कर हत्तंत्री में
मानवता के मंजुल तार।
सुनासुना कर वसुधा-तल को
सुधा भरी उसकी झनकार ॥ १ ॥

गा गा कर अनुराग राग से
रंजित अनुरागी जन राग।
धुन को लय को स्वर समूह को
सब स्वर्गीय रसों में पाग ॥
चारु चारु नयनों को दिखला
जग आलोकित कर आलोक।
कला निराली कला कली में
कला कलानिधि में अवलोक ॥ २ ॥

बढ़ा चौगुनी चतुरानन से
चींटी तक सेवा की चाह।
बहु विमुग्ध हो बहे हृदय में
आपामर का प्रेम-प्रवाह।
कलित से कलित कामधेनुसम
कामद कर कमनीय कलाम।
ललित से ललित बनबन देखा
अललित चित में ललितललाम ॥ ३ ॥

—❀—

मयंक

प्रकृति देवि कल मुक्तमाल मणि
गगनांगण का रत्न प्रदीप।
भव्य बिन्दु दिग्वधूभाल का
मंजुलता अवनी अवनीप।
रजनि सुन्दरी रंजितकारी
कलित कौमुदी का आधार।
विपुल लोक लोचन पुलकित कर
कुमुदिनि-वल्लभ शोभा सार ॥ १ ॥

रसिक चकोर चारु अवलम्बन
सुन्दरता का चरम प्रभाव।
महिला मुख-मंडल का मंडन
भावुक-मानस का अनुभाव॥
रुला रुला कर अवनी-तल को
कर सूना राका का अंक।
काल-जलधि में डूब रहा है
कलाहीन हो कलित मयंक॥ १॥

खद्योत

प्रकृति-चित्र-पट असित-भूत था
छिति पर छाया था तमतोम।
भाद्र-मास की अमा-निशा थी
जलद-जाल पूरित था व्योम॥
काल-कालिमा-कवलित रवि था
कलाहीन था कलित मयंक।
परम तिरोहित तारक-चय था,
था कज्जलित ककुभ का अंक॥ १॥

दामिनि छिपी निविड़ घन में थी
अटल राज्य तम का अवलोक।
था निशीथ का समय, अवनितल-
का निर्वापित था आलोक॥
ऐसे कुसमय में तम-वारिधि-
मज्जित भूत निचय का पोत।
होता कौन न होता जग में
यदि यह तुच्छ कीट खद्योत॥ ३॥

—❀—

होली

पद

किस लाली से तू है लाल।
कौन मल गया मुख पर तेरे गोरी ललित गुलाल॥
बनी कौन मद पी मतवाली।
आँखों में छाई क्यों लाली।
कुसुमावलि-माला छबि वाली।
पिन्हा गया क्यों कोई माली।
क्यों गुलाल सा आज हो गया गोरा गोरा गाल॥ १॥

तरु-किसलय लालिमा लुनाई ।
किंशुक कुसुम ललाम ललाई ।
दाड़िम-कलिका कलित निकाई ।
देख देख क्या विपुल लुभाई ।
या बिलोक बिकसित वारिज मंजुल दल हुई निहाल ॥ २ ॥

लाल लाल लोनी लतिकायें ।
नवल बेलि की केलि कलायें ।
कुंकुम कान्त बदन ललनायें ।
लीला-लोलुप-जन लीलायें ।
क्या तेरे अनुरंजन-सर की हैं सोतियाँ रसाल ॥ ३ ॥

छीन दिग्वधू की ली लाली ।
बनी बाल-रवि-रंजिनि आली ।
जगती-तल रक्तिमता लाली ।
लोक ललाम भूत से पाली ।
अथवा भरी गिरे अबीर के भरे भराये थाल ॥ ४ ॥

है अनुराग राग की थाती ।
राग रंग रंगत से राती ।
या तुझ पर लोचन ललचाती ।
छटा रँगीली है छबि पाती ।
या वह बड़ा रँगीला रँगला रंग गया है डाल ॥ ५ ॥

हमारी होली

पद

कहाँ गई होली मुख लाली।

छिन क्यों गई फूल की डाली।

छिन्न कर दिया किसने रस सुमनों का सुन्दर हार ॥ १ ॥

है स्वर-लहरी नहीं लुभाती।

है न मुरज-ध्वनि मुग्ध बनाती।

है मोहकता उमग न पाती।

है न रसिकता रस बरसाती।

टूट गया क्यों सुरुचि-विपंची का अति रुचिकर तार ॥ २ ॥

कुसुमाकर क्यों नहीं सरसता।

सुधा सुधाकर नहीं बरसता।

चित था जिसके लिये तरसता।

वह समीर क्यों नहीं परसता।

नहीं बनाता मधुमय मानस क्यों मधुकर झंकार ॥ ३ ॥

है न मुकुल-कुल पुलकति कारी।

है न कलित तम कुसुमित क्यारी।

है न पलाश-लालिमा प्यारी।

है न नवल लतिका छबि न्यारी।

मन्द मन्द क्यों बहा न मलयज ले मरन्द का भार ॥ ४ ॥

है गुलाल मय गगन न होता।
ककुभ में न बहता रस-सोता।
है चित चाव-बीज नहिं बोता।
है प्रमोद-मोती न पिरोता।
है कोकिल-काकली न करती मोहन-मंत्र प्रचार ॥ ५ ॥

समय-कुसुम में कीट समाया।
पड़ी चित्त पर कलुषित छाया।
रस में अनरस गया मिलाया।
या सुख-विकच-वदन कुँभिलाया।
अथवा अब असार जीवन में रहा नहीं कुछ सार ॥ ६ ॥

ललना-लाभ

खुला था प्रकृति-सृजन का द्वार।
हो रही थी रचना रमणीय ॥
बिरचती थी अति रुचिकर चित्र।
तूलिका बिधि की बहु कमनीय ॥ १ ॥

रंग लाती थीं हृदय-तरंग।
बह रहा था चिन्ता का स्रोत ॥
मंद गति से अवगति-निधि मध्य।
चल रहा था जग-रंजन पोत ॥ २ ॥

चित्र-पट पर भव के उस काल।
खिंच गई एक मूर्ति अभिराम॥
सरलता कोमलता अवलम्ब।
सरसता मय मोहक रति काम॥ ३॥

उमा सी महिमा मयी महान।
रमा सी रमणीयता निकेत॥
गिरासी गौरव गरिमावान।
मानवी जीवन-ज्योति उपेत॥ ४॥

अलौकिक केलि-कला-कुल कान्त।
हृदय-तल सुललित लीलाधाम।
मधुर माता-मानस-सर्वस्व॥
नाम था ललना लोक-ललाम॥ ५॥

— ❀ —

जुगनू

चौपदे

पेड़ पर रात की अँधेरी में।
जुगनुओं ने पड़ाव हैं डाले॥
या दिवाली मना चुड़ैलों ने।
आज हैं सैकड़ों दिये बाले॥ १॥

तो उँजाला न रात में होता।
बादलों से भरे अँधेरे में॥
जो न होती जमात जुगनू की।
तो न बलते दिये बसेरे में॥ २॥

रात बरसात की अँधेरे में,।
तो न फिरती बखेरते मोती॥
चाँदतारा पहन नहीं पाती।
जुगनुओं में न जोत जो होती॥ ३॥

जगमगायें न किस तरह जुगनू।
वे गये प्यार साथ पाले हैं॥
क्यों चमकते नहीं अँधेरे में।
रात की आँख के उँजाले हैं॥ ४॥

हैं कभी छिपते चमकते हैं कभी।
झोंकते किस आँख में ए धूल हैं॥
रात में जुगनू रहे हैं जगमगा।
या निराली बेलियों के फूल हैं॥ ५॥

स्याह चादर पर अँधेरी रात की।
यह सुनहला काम किसने है किया॥
जगमगाते जुगनुओं की जोत है।
या जिनों का जुगजुगाता है दिया॥ ६॥

हम चमकते जुगनुओं को क्या कहें ।
डालियों के एक फबीले माल हैं ॥
हैं अँधेरे के लिये हीरे बड़े ।
रात के गोदी भरे ए लाल हैं ॥ ७ ॥
मोल होते भी बड़े अनमोल हैं ।
जगमगाते रात में दोनों रहें ॥
लाल दमड़ी का दिया है, क्यों न तो ।
जुगनुओं को लाल गुदड़ी का कहें ॥ ८ ॥
क्यों न जुगनू की जमातों को कहें ।
जोत जीती जागती न्यारी कलें ॥
आँधियाँ इनको बुझा पाती नहीं ।
ए दिये वे हैं कि पानी में बलें ॥ ९ ॥
जब कि पीछे पड़ा उँजाला है ।
तब चमक क्यों सकें उँजेरे में ॥
हैं किसी काम के नहीं जुगनू ।
जब चमकते मिले अँधेरे में ॥१०॥
रात बीते निकल पड़े सूरज ।
रह सकेगी न बात जुगनू की ॥
सामने एक जोत वाले के ।
क्या करेगी जमात जुगनू की ॥११॥

जी जले और जुगनू

जगमगाते रतन जड़े जुगनू ।
कलमुँही रात के गले के हैं ॥
जुगनुओं की जमात है फैली ।
या अँगारे जिगर जले के हैं ॥१२॥

जो चमक कर सदा छिपा, उसकी ।
वह हमें याद क्यों दिलाता है ॥
तब जले-तन न क्यों कहें उसको ।
जब कि जुगनू हमें जलाता है ॥१३॥

जगमगाते ही हमें जुगनू मिले ।
झड़ लगी, ओले गिरे, आँधी बही ॥
आप जल कर हैं जलाते और को ।
आग पानी में लगाते हैं यही ॥१४॥

हैं बने बेचैन जुगनू घूमते ।
कौन से दुख बे तरह हैं खल रहे ॥
है बुझा पाता न उसको मेंह-जल ।
हैं न जाने किस जलन से जल रहे ॥१५॥

बे तरह वह क्यों जलाता है हमें ।
है सितम उसका नहीं जाता सहा ॥

क्या रहा करता उँजाला और को।
आप जुगनू जब अँधेरे में रहा ॥१६॥
कौन जलते को जलाता है नहीं।
तर बनीं बरसात रातें-देख लीं ॥
जल बरसना देख मेघों का लिया।
थाम दिल जुगनू-जमातें देख लीं ॥१७॥
मेघ काले, काल क्यों हैं हो रहे।
किस लिये कल, कलमुही रातें हरें ॥
बेकलों को बेतरह बेकल बना।
कल-मुँहे जुगनू न मुँह काला करें ॥१८॥

विषमता

छप्पै

मंगल मय है कौन किसे कहते हैं मंगल।
फलदायक है कौन सफलता है किस का फल ॥
मंगल कितने लोग अमंगल में हैं पाते।
विविध विफलता सहित सफलता के हैं नाते ॥
पादप सब पत्र विहीन हो पा जाते हैं नवल दल।
विकसित कुसुमावलि लोप हो लहती है कमनीय फल ॥ १ ॥

विफल हुए साहसी शक्ति है शक्ति दिखाती।
असफलता है उसे सफलता सूत्र बताती॥
यदि स्वाधीनता प्रदानकर करे जाति को वह जयी।
तो विपुल वाहिनी वध हुई बनतीहै मंगलमयी॥ ५॥

घनश्याम

वीरछंद

१

श्याम रंग में तो न रँगे हो जो अन्तर रखते हो श्याम।
तो जलधर हो नहीं विरह-दव में जो जल जल जीवें बाम॥
जीवनप्रद हो तभी करो जो तुम चातक को जीवन दान।
कैसे सरस कहें हम तुमको ऊसर हुआ न जो रसवान॥

२

कैसे हो परजन्य, वियोगी जन को जो हो दुखद वियोग।
पयद न हो जो दल जवास का पला न कर उसका उपयोग॥
बने पयोधर पर न सके कर पय प्रेमिक-मराल प्रतिपाल।
बिलसित रहे बहन कर उर पर आप बलाका मंजुल माल॥

३

बहुधा करते हो बसुधा का बिपुल उपल द्वारा अपकार।
इसी लिये कर घोर नाद हो सहते दामिनि-कशा-प्रहार॥

उमड़ उमड़ बर बारिबाह बन हो भर देते सरि सर ताल ।
रहता है प्यासे पपीहरा को कतिपय बूंदों का काल ॥

४

अशनि-पात-प्रिय, अधर-विलंबी, कलुक-निकेतन, दानव-देह ।
हो तुम मशक-दंश-अवलम्बन तुम्हें कुटिल अहि का है नेह ॥
रहे भरे ही को जो भरते बरस बारि-निधि में बसु याम ।
तो नभ तल में घरी घरी घिर रहे घूमते क्या घनश्याम ॥

—※—

विकच वदन

तांटंक

१

जो न परम कोमलता उसकी रही विमलता में ढाली ।
जो माई के लाल कहाने की न लसी उस पर लाली ॥
कातर जन की कातरता हर होती है जो शान्ति महा ।
उसकी मंजु व्यंजना द्वारा जो वह व्यंजित नहीं रहा ॥

२

लोकप्यार-आलोकों से जो आलोकित वह हुआ नहीं ।
पूत प्रीति पुलकित धारायें जो उस पर पल पल न बहीं ॥
देश-प्रेम की कलित कान्ति से कान्तिमान वह जो न मिला ।
जाति-हितों के वर विकास से जो वह विकसित हो न खिला ॥

३

होकर सिक्त रुचिर रस से जो रसमयता उसकी न बढ़ी।
सुन्दरता में से जो उसकी सुरभि परम सुन्दर न कढ़ी॥
जो वह भाव-भक्ति-आभा से बहु आभामय नहीं बना।
जो वह पातक-तिमिर-निवारक प्रभा-पुंज में नहीं सना॥

४

जो उदारता दया दान की दमक न दे उसको दमका।
जो न जन्मभू-हित-चिन्ता की चाह चमक से वह चमका॥
तो मानवता-रत मानव का बना सकेगा मुदित न मन।
विधु सा विपुल विनोद-निकेतन बारिज जैसा विकच वदन॥

मर्म्म-व्यथा

पद

कहाँ गया तू मेरा लाल।
आह! काढ़ ले गया कलेजा आकर के क्यों काल।
पुलकित उर में रहा बसेरा।
था ललकित लोचन में डेरा॥
खिले फूल सा मुखड़ा तेरा।
प्यारे था जीवन-धन मेरा॥
रोम रोम में प्रेम प्रवाहित होता था सब काल॥ १॥

तू था सब घर का उँजियाला।
मीठे बचन बोलने वाला॥
हित-कुसुमित-तरु सुन्दर-थाला।
भरा लबालब रसका प्याला॥
अनुपम रूप देख कर तेरा होती विपुल निहाल॥ २॥

अभी आँख तो तू था खोले।
बचन बड़े सुन्दर थे बोले॥
तेरे भाव बड़े ही भोले।
गये मोतियों से थे तोले॥
बतला दे तू हुआ काल कवलित कैसे तत्काल॥ ३॥

देखा दीपक को बुझ पाते।
कोमल किसलय को कुँभलाते॥
मंजुल सुमनों को मुरझाते।
बुल्ले को बिलोप हो जाते॥
किन्तु कहीं देखी न काल की गति इतनी बिकराल॥ ४॥

चपला चमक दमक सा चंचल।
तरल यथा सरसिज-दल गत जल॥
बालू-रचित भीत सा असफल।
नश्वर घन-छाया सा प्रतिपल॥
था इन से भी क्षणभंगुर है जन-जीवन का हाल॥ ५॥

आकुल देख रहा अकुलाता।
मुझ से रहा प्यार जतलाता॥
देख बारि नयनों में आता।
तू था बहुत दुखी दिखलाता॥
अब तो नहीं बोलता भी तू देख मुझे बेहाल॥ ६॥

तेरा मुख बिलोक कुँभलाया।
कब न कलेजा मुँह को आया॥
देख मलिन कंचन सी काया।
विमल विधु-वदन पर तम छाया॥
कैसे निज अचेत होते चित को मैं सकूँ सँभाल॥ ७॥

ममता मयी बनी यदि माता।
क्यों है ममता-फल छिन जाता॥
विधि है उर किस लिये बनाता।
यदि वह यों है बिंध बिंध पाता॥
भरी कुटिलता से हूँ पाती परम कुटिल की चाल॥ ८॥

किस मरु-महि में जीवन-धारा।
किस नीरवता में रव प्यारा॥
किस अभाव में स्व,भाव सारा।
किस तम में आलोक हमारा॥
लोप होगया, मुझ दुखिया को दुख-जल-निधि में डाल॥ ६॥

आज हुआ पवि-पात हृदय पर।
सूखा सकल सुखों का सरवर॥
गिरा कल्प-पादप लोकोत्तर।
छिना रत्न-रमणीय मनोहर॥
कौन लोक में गया हमारा लोक-अलौकिक बाल॥१०॥

मनोव्यथा

पद

कुम्हला गया हमारा फूल।
अति सुन्दर युग नयन-बिमोहन जीवन सुख का मूल॥
बिकसित बदन परम कोमल तन रंजित चित अनुकूल।
अहह सका मन मधुप न उसकी अति अनुपम छबि भूल॥१॥

बंद हुई आँखों को खोलो।
अभी बोलते थे तुम प्यारे बोलो बोलो कुछ तो बोलो॥
देखो भाग न मेरा सोवे चाहे मीठी नींदों सो लो।
एक तुम्हीं हो जड़ीसजीवन हाथ न तुम जीवन से धोलो॥२॥

खोजें तुम्हें कहां हम प्यारे।
ए मेरे जीवन-अवलम्बन ए मेरे नयनों के तारे॥
नहीं देखते क्यों दुख मेरा मुझ दुखिया के एक सहारे।
ललक रहे हैं लोचन पल पल मुख दिखला जा लाल हमारे॥३॥

इतने बने लाल क्यों रूखे।
तुम सा रुचिर रत्न खो करके आज हुए हम खूखे॥
कैसे बिकल बनें न बिलोचन छबि अवलोकन भूखे।
मृतक न क्यों मन-मीन बनेगा प्रेम-सरोवर सूखे॥ ४॥

प्यारे कैसे मुँह दिखलायें।
लेती रही बलैया सब दिन ले नहिं सकीं बलायें॥
जिस पर भूली रही भूल है उसे भूल जो पायें।
धिक है जीवनधन बिन जग में जो जीवित रह जायें॥ ५॥

स्वागत

(१)

हरिगीतिका

क्यों आज सूरज की चमक यों है निराली हो रही।
क्यों आज दिन आनन्द की धारा धरातल में बही॥
क्यों हैं चहक चिड़ियाँ रहीं क्यों फूल हैं यों खिल रहे।
क्यों जी हरा कर पेड़के पत्ते हरे हैं हिल रहे॥ १॥
क्यों हैं दिशायें हँस रहीं क्यों है गगन रँग ला रहा।
वह डूब कर के प्यार में क्या है हमें बतला रहा॥
लेकर महँक महमह महँकती क्यों हवा है बह रही।
वह मंद मंद समीप आ क्या कान में है कह रही॥ २॥

क्या हैं कृपा कर आ रहे मेहमान वे सब से बड़े।
हैं बहु पलक के पाँवड़े जिसके लिये पथ में पड़े॥
प्रभु आइये हम हैं समादर सहित स्वागत कर रहे।
मोती निछावर के लिये हैं युग नयन में भर रहे॥ ३॥
बहु विनय सी अनमोल मणि, बर बचन से हीरे बड़े।
उपहार देने के लिये हैं प्रेम-पारस ले खड़े॥
है भक्ति की डाली हमारी भाव फूलों से भरी।
स्वीकार इसको कीजिये है चाव करतल पर धरी॥ ४॥
प्रभु पग कमल को छू यहाँ की भूमि भाग्यवती बनी।
हम परम सम्मानित हुए हो विपुल गौरव-धन धनी॥
प्यारे प्रजा जन पुत्र लौं प्रभु प्यार पलने में पलें।
सब हों सुखी, प्रभु यश लहें, चिरकाल तक फूलें फलें॥ ५॥

---

(१)

चौपदे

चाहते हैं जब यही छोटे बड़े।
क्यों न स्वागत के लिये तब हों खड़े।
फूल कोई साथ मैं लाया नहीं।
चाहता हूँ फूल मुंह से ही झड़े॥ १॥

राह में आँखें बिछाईं, सोच यह ।
पंखड़ी कोई न पावों में गड़े ।
पाँवड़े मैं डालता क्यों दूसरे ।
पाँवड़े मेरी पलक के हैं पड़े ॥ २ ॥
क्यों भरे कलसे रखायें, जब रहे ।
प्यार के जल से भरे रुचि के घड़े ।
लाड़ ही जब है निछावर हो रहा ।
तब निछावर क्यों करें हम चौलड़े ॥ ३ ॥
मान के भूखे किसी मेहमान को ।
भेंट क्यों देवें कड़े हीरे-जड़े ।
भर उमंगों में बड़े अरमान से ।
मान के हम पान लेकर हैं अड़े ॥ ४ ॥

दिव्य दोहे

दिव्य दोहे
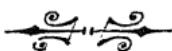
नीति-गुच्छ

दोहा

अपने अपने काम से है सब ही को काम ।
मन में रमता क्यों नहीं मेरा रमता राम ॥ १ ॥

गुरु-पग तो पूजे नहीं जी में जंग उमंग ।
विद्या क्यों विद्या बने किये अविद्या संग ॥ २ ॥

लाल लाल आँखें करें गुरु को समझें काल ।
तदपि लालसा है बनें हम माई के लाल ॥ ३ ॥

माँगे लघुता ही मिली मानस के अनुरूप ।
वामन ने की याचना धर कर वामन रूप ॥ ४ ॥

कर पसार वामन लगे जब पसारने पाँव ।
वामनता को नहिं मिला वामनता में ठाँव ॥ ५ ॥

क्यों माने मन दान को महि में महिमा वान ।
बलि जब बंधन में पड़ा विधि पर हो बलिदान ॥ ६ ॥

खेद रहित है तदपि है करता हमें सखेद ।
रख अभेदता भाव में वलि वामन को भेद ॥ ७ ॥
बातें करें अकास की बहक बहक हों मौन ।
जो वे बनते संत हैं तो असंत है कौन ॥ ८ ॥
अपने पग पर हो खड़े तजें पराई पौर ।
रख बल अपनी बाँह का बनें सबल सिरमौर ॥ ९ ॥
कौन पास उसका करे जिसे नहीं निज पास ।
पूज पराये पाँव को किस की पूजी आस ॥१०॥
प्यास कभी जाती नहीं पिये बिना रस ऊख ।
भूख भला किस की भगी हरे देख कर रूख ॥११॥
कोई भला न कर सका खल को बहुत खखेड़ ।
सुन्दर फल देते नहीं बुरे फलों के पेड़ ॥१२॥
क्या खुल पाये जब गये नीलकंठ ! पर टूट ।
क्या छूटे जब नहिं सके कुटिल काक से छूट ॥१३॥
चाकर हैं सब चित्त के क्या चकोर क्या कोक ।
खिले कमल अवलोक रवि कुमुद मयंक विलोक ॥१४॥
आनन्दित, कर है वही कुमुद हृदय आनन्द ।
होवे विविध कलंक से क्यों न कलंकित चन्द ॥१५॥
अपने अपने भाव हैं अपने अपने साथ ।
भूले आक-प्रसून पर भोले भोला नाथ ॥१६॥

केसर रंग प्रसंग से फड़के भरे उमंग।
केसरिया बागा पहन बीरकेसरी अंग ॥१७॥

अल्प काल से कलित है चिर संगति का काल।
केसर-क्यारी कब बना केसर बिलसित भाल ॥१८॥

कहाँ सुबास बसी रही बनी कुबास कुठौर।
कामुकता कस में रहे कल केसर की खौर ॥१९॥

काले रँग में जो रँगे होते कुटिल कठोर।
मूँगे सा होता नहीं तो सूगे का ठोर ॥२०॥

विकसित करते नहिं किसे विकच वदन बुध बृन्द।
हिले मिले अलि से रहे कब न खिले अरबिन्द ॥२१॥

भूल भूल है, क्यों कहें उसे बुद्धि अनुकूल।
फूले बिना सफल बने कैसे गूलर फूल ॥२२॥

विधि सा सुत रवि सा सुहृद पा हरि सा आधार।
सार हीन होता रहा सरसिज पड़े तुसार ॥२३॥

काल बना क्यों कमल का क्यों कर सका न प्यार।
तू तुसार यह समझले है असार संसार ॥२४॥

कैसे बारिज पुंज की दहे नहीं वह देह।
हिमकर-अहितू से करे हिम समूह क्यों नेह ॥२५॥

भले बुरे की हो रही भले बुरे से आस।
काँटे हैं तन वेधते देते सुमन सुबास ॥२६॥

पादप-पंक्ति

जो न भले हैं, तो भले कैसे दें फल फूल।
काँटे बोवें क्यों नहीं काँटे भरे बबूल ॥ १ ॥

है छाया छाया नहीं, हैं फल चढ़े पहाड़।
ऊँचे बन पाये नहीं सिर ऊँचा कर ताड़ ॥ २ ॥

रसिक जनों के हैं सधे सरस हृदय से काम।
रसवाले फल दे सके रसवाले तरु आम ॥ ३ ॥

काँटे बिध बिध के न क्यों बेध बेध दें पैर।
बैर नाम है बैर का कैसे करे न बैर ॥ ४ ॥

पत खोकर होती नहीं सुखद सुखों की प्यास।
क्या फूले, दल रहित हो फूले अगर पलास ॥ ५ ॥

अधिक मधुर जो कर सका तेरे फल को पाल।
क्या रसालता तो रही तेरी विटप रसाल ॥ ६ ॥

रह समीप सुख से हिले बदरी-फल दिन रात।
क्यों विदलित होता रहे कदली-दल का गात ॥ ७ ॥

विपुल थलों को सछबि कर बन बहु मंगल धाम।
बड़े हुए हैं कदलि-दल बड़े बड़े कर काम ॥ ८ ॥

कटुता में पटुता मिली है हित-पटु कटु नीम।
दल हैं नर-दुख दलन रत फल हैं फलद असीम ॥ ९ ॥

ऊंचा होकर भी सका तू चल भली न चाल।
चंचल दल तेरे रहें क्यों चलदल सब काल॥१०॥

कर देते हैं जी हरा बार बार कर छेड़।
पा कर के पत्ते हरे ए पाकर के पेड़॥११॥

बहु-विनोद-धन से किसे नहिं करता धनवंत।
हरसिंगार की सुरभि से हो सौरभित दिगंत॥१२॥

पुलकित करती है विपुल बन बन पुलक निवास।
हरसिंगार की दूर से आती सरस सुवास॥१३॥

हो माई का लाल तो एक लाल है लाल।
कब सेमल लाली रही हो फूलों से लाल॥१४॥

सेमल हो ऊँचे तदपि हो भूले, कर भूल।
जिनके फल हैं नहिं भले क्या वे सुन्दर फूल॥१५॥

हैं सुन्दरता सफलता मधुमयता अवलम्ब।
ए कदम्ब-तरु के खिले पीले कुसुम कदम्ब॥१६॥

कुसुम-क्यारी

भली रही होती अगर भौंरे ही से भूल।
बेले पर फूले नहीं क्यों बेले के फूल॥१॥

क्यों फूली है तू बहुत भली नहीं यह बान।
जूही तूही सोच क्या तूही है छबिवान॥२॥

है सुबास सुकुमारता सुन्दरता में लीन।
बेलि चमेली की बने कैसे अलबेली न ॥ ३ ॥
हरे हरे दल में लसे सके नहीं पल भूल।
गेंदे के फूले हुए पीले पीले फूल ॥ ४ ॥
वह तन पाती है नहीं जग में ज्योति-बितान।
होवेगी गुलचाँदनी क्यों चाँदनी समान ॥ ५ ॥
दल दमके चमकें सुमन बन तारक उपमान।
तो होगी गुलचाँदनी क्या चाँदनी समान ॥ ६ ॥
हैं कितने सुन्दर सरस कितने दृग अनुकूल।
रँगे गुलाबी रंग में ए गुलाब के फूल ॥ ७ ॥
किसे नहीं हैं मोहते मिले मनोहर आब।
रंग भरे निखरे खरे सुथरे सरस गुलाब ॥ ८ ॥
ललित ललाम कपोल से बिलसित मंजुल धूल।
हैं अनमोल गुलाब के गोल गोल ए फूल ॥ ९ ॥
मिले बुरों में कब भले यह कहना है भूल।
काँटों में रहते नहीं क्या गुलाब के फूल ॥१०॥
आकुल करते नहिं किसे हो अंगज प्रतिकूल।
दल सकते तन-कीट नहिं बहु दल वाले फूल ॥११॥
आम आम है प्रकृति से और बबूल बबूल।
काँटे हों काँटे रहे रहे फूल ही फूल ॥१२॥

पाता गुणी समान है मान नहीं गुणहीन।
नाम मिले, गुलचाँदनी हुई चाँदनी सी न ॥१३॥
वैसे ही विकसे रहे रही वैसि ही आब।
काँटों में रह रह हुए नहिं कंटकित गुलाब ॥१४॥
है समानता की नहीं किसी सुमन में ताब।
हैं गुलाब के फूल से सुन्दर फूल गुलाब ॥१५॥
देख बर-विभव कब हुई प्रमुदित प्रीति बधू न।
नयन-पटल हैं खोलते पाटल रुचिर प्रसून ॥१६॥
जो उस का चाहक नहीं भूरि भाव मय भृंग।
तो चम्पक है काम का कहाँ चम्पई रंग ॥१७॥
कब गौरव से गौरवित हुआ कलंकित गात।
चम्पक बरनी सा बने बनी न चम्पक बात ॥१८॥
देख प्रेम-पथ के नियम मति होती है मौन।
बिकच कुमुदिनी को करे बिना कौमुदी कौन ॥१९॥
आलोकित होवे जगत पा दिनकर आलोक।
प्रमुदित होते हैं कुमुद कुमुद-बंधु अवलोक ॥२०॥
है वह उसका चाव-थल चिर परिचित चित चोर।
सूरजमुखी न मुख रखे क्यों सूरज मुख ओर ॥२१॥
बसुधातल में है बिदित बदन विलोकन बान।
कौन सरोज़-मुखी मिली सूरजमुखी समान ॥२२॥

पाते हैं प्यारी सुरभि सारे सुमन अनूप ।
न्यारी न्यारी रंगतें न्यारे न्यारे रूप ॥२३॥

उसके दल अनुराग के परम चतुर हैं चोर ।
जपा-लालिमा सी मिली कहाँ लालिमा और ॥२४॥

ललना-अधरों पर लगी जिसकी सुललित छाप ।
जपा! लालिमा वह मिली कौन मंत्र कर जाप ॥२५॥

बनता है बहु भाव मय निज कुभाव को भून ।
हो मुकुन्द-बनमाल में बिलसित कुन्द प्रसून ॥२६॥

त्रिपुर-निकन्दन-मौलि पर चढ़ कदापि मत फूल ।
कुन्द! कभी आनन्द के कन्द को न तू भूल ॥२७॥

शिव-तन की समता मिले हो हो ममतावन्त ।
कुन्द दन्त सम बन करो मत गौरव का अन्त ॥२८॥

है मानस को मोहती महँ महँ महँक अपार ।
मन्द मन्द आती पवन परस परस मन्दार ॥२९॥

सहज बिकचता चित्त की लालच लोचन लोल ।
हैं मंजुल मन्दार की मालाओं के मोल ॥३०॥

रसलोलुप अलि-अवलि को वर रस देती जो न ।
तो सकती तू सेवती रुचिर रसवती हो न ॥३१॥

उस को प्रेमिक-मधुप को कब न रही परवाह ।
नहीं निवारी जा सकी नवल निवारी चाह ॥३२॥

है मदार के फूल में रूप न रंग न बास।
कैसे भला मधुर हृदय मधुकर आवे पास ॥३३॥

है बसती अपकारिता सब में गरल समेत।
पीली हो या लाल हो या कनेर हो स्वेत ॥३४॥

अंधे कर कर वह रही प्रेमिक अलि प्रतिकूल।
मिले धूल में केतकी तेरी सुरभित धूल ॥३५॥

तेरे कांटों से रहे जो छिद्ते अलि-गात।
तो तू कैसे केतकी बनी कनक-अवदात ॥३६॥

गंध नहीं रस रूप नहिं है मदांधता-भौन।
औढर-ढरन बिना ढरे आक-कुसुम पर कौन ॥३७॥

मन-मयूर है नाचता मोद मान सउमंग।
श्याम घटा सा देख कर श्यामघटा का रंग ॥३८॥

नयन-विमोहन मधु-सदन मोदमयी महनीय।
कुसुम-कुसुम की कुसुमता है नितान्त कमनीय ॥३९॥

प्यारा लगता है कुसुम बड़ा निराला ढंग।
रहा कब नहीं सोहता तेरा सूहा रंग ॥४०॥

कैसे कोमल हैं कुसुम ए हैं कुलिश समान।
हैं अवेध को वेधते बन अनंग के बान ॥४१॥

तब क्यों आकुल अलि करे कुटज-कुसुम रसपान।
जब करती है माधवी अति मंजुल-मधु दान ॥४२॥

क्या बिकसे बारिज नहीं क्या सरसे नहिं बौर ।
घेर घेर हैं घूमते क्यों कनेर को भौंर ॥४३॥
किस में ऐसा है मधुर रूप रंग औ बास ।
मधुलोभी मधुकर तजे क्यों माधवी निवास ॥४४॥
हैं सुरंग सुन्दर बड़े अनुपम छबि अनुकूल ।
पा न सके मंजुल महँक गुलमेंहदी के फूल ॥४५॥
रंग किसी के पास है रूप किसी के पास ।
किसी फूल में ही मिला रूप रंग औ बास ॥४६॥
रहा प्यार के रंग का जगती-तल में जोर ।
काले फूल कहीं मिले लाल फूल सब ओर ॥४७॥
प्यारे होंगे भाव को श्याम रंग में बोर ।
श्यामघटा की श्यामता सदा रही चित चोर ॥४८॥
हरियाली उनके लिये हुई नहीं अनुकूल ।
हरे पेड़ फल दल मिले हरे मिले नहिं फूल ॥४९॥
उजले पीले लाल हैं अथवा नीले आप ।
कर देते हैं जी हरा मंजुल कुसुम कलाप ॥५०॥
औरों के कुछ और हों हैं उसके सुखमूल ।
हरी लहलही दूब के सहज फबीले फूल ॥५१॥
लोचन खुले बिनोद के बिलसित हुए विवेक ।
किसी अमल जल-ताल में विकसे कमल अनेक ॥५२॥

सकल लोकपति-कीर्ति का हैं कर रहे विकास ।
उजले उजले फूल से लसे सुविकसित कास ॥५३॥

फूल फूल-जैसे नहीं है न बास का बास ।
किसी काम का है नहीं तेरा कास-विकास ॥५४॥

उसका रवि से बैर है इसका रवि से प्यार ।
करे कमल-कुल का दलन कैसे नहीं तुसार ॥५५॥

—❀—

मधुकर

क्या न भरेंगे भाँवरें क्या भूलेंगे भौंर ।
क्या तज देंगे कुसुम को कंटक-भय से भौंर ॥ १ ॥

होती है पुलकित विपुल मिले अतिललित-ओक ।
विकसित कली गुलाब की अलि-अवली अवलोक ॥ २ ॥

कहाँ मधुप लोलुप महा चपल अमंजुल गात ।
कहाँ गुलाब खिली कली कोमल कल अवदात ॥ ३ ॥

विधि संगत होते नहीं विधि के बहु सम्बंध ।
है सुगंध पूरित सुमन मधुप परम मधु अंध ॥ ४ ॥

रंग तुमारा है रुचिर उनके काले अंग ।
सुमन तुमारी क्यों पटी कपटी मधुकर संग ॥ ५ ॥

खिले भले ही हों सुमन हो अति सुन्दर रंग ।
सदा रहे कृमि-कुल-दलित आकुल अलि से तंग ॥ ६ ॥

पहुँचे को, प्रिय पास है पहुँचाती पहचान।
चंचरीक चित में चुभी चम्पक चम्पकता न ॥ ७ ॥

कैसे तन को बेधते केतकि–कंटक–पुंज।
मिलती मत्त मलिन्द को जो मालती-निकुंज ॥ ८ ॥

फंद में न फँसता अगर आँख न होती बन्द।
है लोलुप मकरन्द का यह मलिन्द मतिमन्द ॥ ९ ॥

है न भलों की नीति यह है न भली यह रीति।
अलि ! अलिनी तज की गई क्यों नलिनी से प्रीति ॥१०॥

गूंज गूंज क्यों कुंज में मचा रहा है धूम।
अली घूम है क्यों रहा कली कली को चूम ॥११॥

ललक ललक बहु कुसुम की लेता है अलि बास।
रस-लोलुप की बुझ सके कैसे रस की प्यास ॥१२॥

प्यार करे अथवा करे चपल मधुप अपकार।
तज न सका सुकुमारता सिरिससुमन सुकुमार ॥१३॥

हो ललाम चाहे सुमन चाहे हो अललाम।
है रस-लोभी मधुप को केवल रस से काम ॥१४॥

आँखों में रज भर गई छिदा बिधा सब गात।
तदपि न है तजता मधुप मधु-पूरित जलजात ॥१५॥

रूप रंग अब नहिं रहा नहीं रही अब बास।
कैसे अलि आवे भला दलित कुसुम के पास ॥१६॥

वह ललामता है नहीं अति आकुल है कोक ।
आज कमल-कुल है दलित अलिकुल ! लो अवलोक ॥१७॥

आकुल क्यों हो देख लो कुटिल काल उत्पात ।
आज हुआ हिमपात से अलिकुल ! कमलनिपात ॥१८॥

हुआ परम मद-मत्त अलि कर कर मधु अनुराग ।
विहर विहर बहु कुंज में हर हर कुसुम-पराग ॥१९॥

है रसप्रिय की रसिकता है मधुप्रिय मधु-प्यास ।
परम बिलासी मधुप का विलसितकुसुमविलास ॥२०॥

दलित हो गये सकल दल सुरभित रही न धूल ।
रहा कमल-कुल अब नहीं अलि-कुल के अनुकूल ॥२१॥

बाल-विलास

बाल-बिलास

भगवान की बड़ाई

जो है हमें बनाने वाला।
उसका है सब काम निराला॥

देखो आसमान के तारे।
कितने हैं आँखों के प्यारे॥

कोई नीला, कोई पीला।
कोई उजला औ चमकीला॥

देखो सूरज को है कैसा।
चाँदी का गोला हो जैसा॥

कैसा प्यारा चाँद बनाया।
जिसने देखा वही लुभाया॥

ठंढी ठंढी हवा बहाई।
जो पेड़ों में हो कर आई॥

यह पानी जो पीने का है।
कितना अच्छा औ मीठा है॥

कर देती है आग हमारा।
काम पका देने का सारा॥

जो यह मिट्टी है दिखलाती।
कितने कामों में है आती॥

रंग रंग के फूल खिलाये।
जिनके ऊपर भौंर लुभाये॥

बड़ा अनूठा औ मनभाया।
चिड़ियों को गाना सिखलाया॥

हरे भरे पत्ते औ डाली।
पेड़ों को दी है हरियाली॥

तुम्हें उसीने आँखें दी हैं।
जिन पर पलकें लगी हुई हैं॥

कान दिये औ नाक बनाई।
जीभ उसी से तुमने पाई॥

हाथ पाँव औ बदन तुम्हारा।
है उसका ही रचा सँवारा॥

लड़को! तुम उसका गुन गावो।
उसको पूजो, उसे मनावो॥

इससे होगा भला तुम्हारा।
पावोगे दुख से छुटकारा॥

सबेरा

उठो लाल आँखों को खोलो।
पानी लाई हूँ, मुख धो लो॥
बीती रात कमल सब फूले।
उनके ऊपर भौंरे भूले॥
चिड़ियाँ चहक उठीं पेड़ों पर।
बहने लगी हवा अति सुन्दर॥
नभ में न्यारी लाली छाई।
धरती ने प्यारी छवि पाई॥ १॥
ऐसा सुन्दर समय न खोवो।
मेरे प्यारे अब मत सोवो॥
भोर हुआ सूरज उग आया।
जल में पड़ी सुनहली छाया॥
मिटा अँधेरा हुआ उँजाला।
किरणों ने जीवन सा डाला॥
जाग जगमगा उठा जगत सब।
मेरे लाल जाग तू भी अब॥
जागो प्यारे हुआ सबेरा।
मैं देखूँ हँसता मुख तेरा॥

आँखें खोल कमल बिकसावो।
होंठ हिला कर फूल खिलावो॥
ठुमुक ठुमुक आँगन में डोलो।
किलक बोलियाँ मीठी बोलो॥
मुझे लुभा लो जी उमगा कर।
रुनुक झुनुक पैंजनी बजा कर॥ ३॥

—❀—

सबेरे के काम

छिप गये तारे, बही प्यारी हवा।
खिल गईं कलियाँ; सबेरा हो गया॥
छोड़ कर के ऊँघना लड़को! उठो।
वह न पनपा इस समय जो सो गया॥ १॥
शौच से आ, हाथ मुँह धो कर, नहा,
जी लगा जगदीश की पूजा करो॥
दीखती सब ओर है जिसकी कला।
तेज से उसके हृदय का तम हरो॥ २॥
फिर बड़ी ही नम्रता से पास जा,
बन्दना माँ-बाप के पग की करो॥
भक्ति से ले धूल उनके पाँव की,
आँख में अपने मलो, शिर पर धरो॥ ३॥

ठीक रखने के लिये तन की कलें,
नित्य ही थोड़ी बहुत कसरत करो ॥
दूध पी कर या कि हलकी वस्तु खा,
निज नसों में बायु फुरतीली भरो ॥ ४ ॥
तब करो वे काम जो हों सामने।
पाठ कर लो याद, या कपड़े पहन—
जो हुआ हो पाठशाला का समय।
तो वहाँ जावो बना उत्फुल्ल मन ॥ ५ ॥

मीठी बोली

बस में जिससे हो जाते हैं प्राणी सारे।
जन जिससे बन जाते हैं आँखों के तारे ॥
पत्थर को पिघला कर मोम बनाने वाली।
मुख खोलो तो मीठी बोली बोलो प्यारे ॥ १ ॥
रगड़ों झगड़ों का कड़वापन खोने वाली।
जी में लगी हुई काई को धोने वाली ॥
सदा जोड़ देने वाली है टूटा नाता।
मीठी बोली प्यार-बीज है बोने वाली ॥ २ ॥
काँटों में भी सुन्दर फूल खिलाने वाली।
रखने वाली कितने ही मुखड़ों की लाली ॥

लिपट बना देने वाली है बिगड़ी बातें।
होती है मीठी बोली करतूत निराली ॥ ३ ॥
जी उमगाने वाली, चाह बढ़ाने वाली।
दिल के पेचीले तालों की सच्ची ताली ॥
फैलाने वाली सुगंध सब ओर अनूठी।
मीठी बोली है बढ़िया फूलों की डाली ॥ ४ ॥
बह जाता है उरों बीच सुन्दर रस-सोता।
प्यारा बनता है वन-बसने-वाला तोता ॥
बुझ जाती है बैर-फूट की आग धधकती।
मीठी बोली से है जन पर जादू होता ॥ ५ ॥

—❀—

प्यार-पञ्चक

मेरे प्यारे बेटे आवो

मीठी मीठी बातें कह के
मेरे जी की कली खिलावो ॥
उमग उमग कर खेलो, कूदो,
लिपट गले से मेरे जावो ॥
इन मेरी दोनों आँखों में
हँस कर सुधा बूंद टपकावो ॥ १ ॥

प्यारे चिनगारी मत खेलो

फेंको, फेंको, उसको फेंको,
मुझसे एक खिलौना ले लो ॥
फेंके देते हो क्यों टोपी ?
उसको अपने शिर पर दे लो ।
देखो रोते हैं ए लड़के,
तुम न छीन इनके गहने लो ॥ २ ॥

तू ने क्यों नन्ही को मारा

कितनी है यह भोली भाली,
कितना है उसका मुख प्यारा ।
दया नहीं क्या होती तुझको ?
बही देख आँसू की धारा ॥
उसका जी भी तुझ सा ही है
क्या इतना भी नहीं विचारा ।
वह है छोटी बहिन तुम्हारी,
क्यों न उसे तुमने पुचकारा ?
जा कर गले लगा लो उसको
कहना मानो लाल हमारा ॥ ३ ॥

प्यारे ! लड़कों को न रुलावो

हँसी खेल के ये पुतले हैं

तनिक न तुम इनको कलपावो ॥

प्यार करो; मुख चूमो; मीठी

बातों से इनको बहलावो ।

खिले हुए सुन्दर मुखड़े को

मत कुम्हलाया फूल बनावो ॥ ४ ॥

बच्चों को तुम जी से चाहो

प्यार करो; आँखों पर ले लो;

पुलकित हो हो उन्हें सराहो ॥

उनसे मीठी बोली बोलो,

जिसमें अनुपम लाड़ भरा हो ।

जिससे वे ऐसे विकसित हों,-

जैसे कोई कमल खिला हो ॥ ५ ॥

माता का प्यार

मेरे लाल हमारे प्यारे।
मेरी आँखों के तारे।
तेरा मुखड़ा भोला भाला।
सुन्दरता-साँचे में ढाला॥

कहीं चन्द्रमा से न्यारा है।
खिले कमल ऐसा प्यारा है।
उसे देख नवनिधि हूँ पाती।
मैं हूँ फूली नहीं समाती॥१॥

मेरे प्यारे बेटे आ जा।
मीठी मीठी बात सुना जा।
रस इन कानों में बरसा जा।
सुधा-बूँद इनमें टपका जा॥

तेरी बातें हैं अति प्यारी।
उसमें है मिसरी सी डारी।
तेरी बातें तुतली, भोली।
है अनमोल मोतियों तोली॥२॥

प्यारे तू है भोला भाला।
मेरी आँखों का उँजियाला।

नई पौध उपजाने वाला।
कीरत-बेलि उगाने वाला॥
भरा लबालब, बड़ा निराला।
तू है मधुर रसों का प्याला।
जिनकी महक बहुत है आला।
तू है उन फूलों का थाला॥ ३॥

तू है ऐसा लाल हमारा।
जो सब लालों से है न्यारा।
तू है ऐसा रतन हमारा।
जिस पर सब रतनों को वारा॥
तू है खिला गुलाब हमारा।
सब फूलों से सजा सँवारा॥
तू है सुन्दर चाँद हमारा।
सब चाँदों से कोमल प्यारा॥ ४॥

तेरे मुखड़े का उँजियाला।
है अँधियाला खोने वाला।
तेरे हाथों की यह लाली।
है उलझी सुलझाने वाली॥
तेरी यह प्यारी किलकारी।
हरती है आकुलता सारी।

तू उस बड़ी जाति का है जन।
जिसका जी है जड़ी-सजीवन॥
तू है उस ऊँचे कुल वाला।
जिसने जग में किया उँजाला।
तू है उस पारस ही का कन।
जिसे छू हुआ लोहा कंचन॥ ८॥

जाति सकल आशाओं का थल।
प्यारे है तेरा मुख कोमल।
जब है वह जी खोल उमगती।
तब है तेरा ही मुँह तकती॥
उसकी आँख लालसा वाली।
तेरे मुख की है मतवाली।
रहती है रुचि-भँवरी भूली।
मुख छबि देख कली सी फूली॥ ९॥

माता की ममता

पद

उठो लाल नभ लाली छाई।
खिलीं गुलाब अनूठी कलियाँ
विकसित हो कमलिनि रँग लाई।

पुलकित कर सारा पृथिवीतल
बही पवन प्यारी मन भाई।
हिलीं पत्तियाँ लतिका डोलीं
पेड़ों ने अनुपम छवि पाई।
लगीं चहकने जग कर चिड़ियाँ
चकवी चकवा के ढिग आई।
दिशा हुई आलोकित कुसुमों-
ओर अलि-अवलि आकुल धाई।

२

जागो प्यारे किरणें फूटीं।
अति छबि साथ तम निधन करके
छिति तल ओर छिटिक कर छूटीं।
जगत जगमगा गिरि शिखरों पर
तरु पर रुचिर जोतियाँ जूटीं।
रजनि-सुन्दरी उर पर लसती
मोती की मालायें टूटीं।

३

मेरे प्यारे आँखें खोलो।
बीती रात छिपे सब तारे
लो पानी अपना मुख धो लो।

वचन तोतले बड़े रसीले
उठ कर किलक किलक कर बोलो ॥
कानों में अपनी जननी के
निपट निराली मिसरी घोलो ॥
लाल लाल पतले होठों से
बिकसे फूलों की छबि तोलो ॥
रुनुक झुनुक पैंजनी बजाके
ठुमुक ठुमुक आँगन में डोलो ॥

कलकेलि

पद

मेरे भोले भाले लड़के ।
लाल लाल हैं हाथ तुमारे जैसे टटके पत्ते बड़ के ॥
जी करता है चूम उन्हें लूं, है उनकी अति भली ललाई ।
देख अनूठी प्यारी रंगत भला न किसकी आँख लुभाई ॥
गये बनाये हाथ लाल क्यों है इसमें यह सूझ निराली ।
इनसे करो काम तुम ऐसे जिनसे बनी रहे मुँह लाली ॥ १ ॥
तू तो खिलता फूल अभी है ।
कभी किलकता औ हँसता है तुतली कहता बात कभी है ॥

सबको तुझसे आस बड़ी है तुझको करता प्यार सभी है।
तुझसे रहे जाति-मुँह लाली तू माई का लाल तभी है ॥ २ ॥

तू सब लालों से है आला।
देखा गया हाथ में तेरे प्रेम-सुधाका सुन्दर प्याला ॥
बड़े लाड़ से भली गोद में तूही सदा गया है पाला।
खुलता है तुझ कुंजीसे ही ज्ञानोंका पेचीला ताला ॥
तुझसा तेज और लालों में किसने कब है देखा भाला।
तेरा ही है रंग निराला तूही है जगका उँजियाला ॥ ३ ॥

रात का सोना

आ री नींद लाल को आ जा।
उसको करके प्यार सुला जा।
तुझे लाल हैं ललक बुलाते।
अपनी आँखों पर बिठलाते ॥
तेरे लिये बिछाई पलकें।
बढ़ती ही जाती हैं ललकें।
क्यों तू है इतनी इठलाती।
आ मैं भी हूँ तुझे बुलाती ॥ १ ॥
गोद नींद की है अति न्यारी।
फूलों से है सजी सँवारी।

उसमें बहुत नरम मन भाई।
रूई की है पहल जमाई॥

बिछे बिछौने हैं मखमल के।
बड़े मुलायम सुन्दर हलके।

जो तू लाल चाह उसकी कर।
तो तू सो जा आँख मूँद कर॥ २॥

मीठी नींदों प्यारे सोवो।
सोने की पुतली मत खोओ।

उसकी करतूतों के ही बल।
ठीक ठीक चलती है तन-कल॥

नींद हाथ में है वह डली।
चखा जिसे पर भूख न टली।

उसकी आँखें हैं रस भरी।
वह है सरग लोक की परी॥ ३॥

गिलहरी

कहते जिसे गिलहरी हैं सब।
सभी निराले उसके हैं ढब॥

पेड़ों से नीचे है आती।
फिर पेड़ों पर है चढ़ जाती॥

कुतर कुतर फल को है खाती।
बच्चों को है दूध पिलाती॥
उसकी रंगत भूरी कारी।
आँखों को लगती है प्यारी॥
होती है यह इतनी चंचल।
कहीं नहीं इसको पड़ती कल॥
उछल कूद में है यह जैसी।
दौड़ धूप में भी है वैसी॥
बैठी इस धरती के ऊपर।
दोनों हाथों में कुछ ले कर॥
जब वह जल्दी से है खाती।
तब है कैसी भली दिखाती॥
चिकना चिकना रोआँ इसका।
लुभा नहीं लेता जी किसका॥
मत तुम इसको ढेले मारो।
जी में इतनी बात विचारो॥
कहीं इसे जो लग जावेगा।
तो इसका जी दुख पावेगा॥
अब तक सब ने है यह माना।
जी का अच्छा नहीं दुखाना॥

बन्दर

देखो लड़को ! बन्दर आया।
एक मदारी उसको लाया॥
कुछ है उसका ढंग निराला।
कानों में है उसके बाला॥
फटे पुराने रंग बिरंगे।
कपड़े उसके हैं बेढंगे॥
मुँह डरावना आँखें छोटी।
लम्बी दुम थोड़ी सी मोटी॥
भवें कभी वह है मटकाता।
आँखों को है कभी नचाता॥
ऐसा कभी किलकिलाता है।
जैसे अभी काट खाता है॥
दाँतों को है कभी दिखाता।
कूद फाँद है कभी मचाता॥
कभी घुड़कता है मुँह बा कर।
सब लोगों को बहुत डरा कर॥
कभी छड़ी लेकर है चलता।
है वह यों हीं कभी मचलता॥

है सलाम को हाथ उठाता।
पेट लेट कर है दिखलाता॥

ठुमुक ठुमुक है कभी नाचता।
कभी कभी है टके माँगता॥

सिखलाता है उसे मदारी।
जो जो बातें बारी बारी॥

वे सब बातें वह करता है।
सदा उसीका दम भरता है॥

देखो बन्दर सिखलाने में।
कहने, सुनने, समझाने से॥

बातें बहुत सीख जाता है।
कई काम कर दिखलाता है॥

फिर लड़को, तुम मन देने पर।
भला क्या नहीं सकते हो कर॥

बनो आदमी तुम पढ़ लिखकर।
नहीं एक तुम भी हो बन्दर॥

बहन

देखो लड़को ! बहन तुम्हारी ।
कैसी है भोली औ प्यारी ॥

उसके हाथ पाँव ए छोटे ।
पतले पतले थोड़े मोटे ॥

लाल लाल औ गोरे गोरे ।
जैसे किसी रंग के बोरे ॥

कितने आँखों को हैं भाते ।
कैसे हैं अच्छे दिखलाते ॥

उसका धीरे धीरे चलना ।
कभी खेलना, कभी मचलना ॥

दो दो दाँतों को दिखलाकर ।
उसका हँसना कुछ मुसकाकर ॥

तुतली बातें प्यारी प्यारी ।
उसका कहना बारी बारी ॥

भला नहीं किसको ठगता है ।
किसे नहीं प्यारा लगता है ॥

उसे खेलौना जब देते हो ।
या जब उसे गोद लेते हो ॥

तब वह कैसा खिल जाती है।
कैसी प्यारी दिखलाती है॥
तुम उसको मत कभी रुलावो।
मत छेड़ो मत उसे डरावो॥
जो है इतनी भोली भाली।
थोड़े में खुश होने वाली॥
बुरी बात है उसे रुलाना।
उसे छेड़ना और खिजाना॥
बातों से उसको बहलावो।
प्यार दिखाकर हँसो हँसावो॥
अच्छे लड़के तभी बनोगे।
औ सब के प्यारे तुम होगे॥

—❀—

कोयल

काली काली कू कू करती।
जो है डाली डाली फिरती॥
कुछ अपनी ही धुन में ऐंठी।
छिपी हरे पत्तों में बैठी॥

जो पंचम सुर में है गाती।
वह ही है कोयल कहलाती॥
जब जाड़ा कम हो जाता है।
सूरज थोड़ा गरमाता है॥
तब होता है समा निराला।
जी को बहुत लुभाने वाला॥
हरे पेड़ सब हो जाते हैं।
नये नये पत्ते पाते हैं॥
कितने ही फल औ फलियों से।
नई नई कोंपल कलियों से॥
भली भाँति वे लद जाते हैं।
बड़े मनोहर दिखलाते हैं॥
रंग रंग के प्यारे प्यारे।
फूल फूल जाते हैं सारे॥
बसी हवा बहने लगती है।
दिशा सब महँकने लगती है॥
तब यह मतवाली हो होकर।
कूक कूक डाली डाली पर॥
अजब समा दिखला देती है।
सबका मन अपना लेती है॥

लड़को! जब अपना मुँह खोलो।
तुम भी मीठी बोली बोलो॥
इससे कितने सुख पावोगे।
सबके प्यारे बन जावोगे॥

एक गुलाब का फूल

देख फूला एक फूल गुलाब का।
तोड़ उसको एक लड़के ने लिया॥
इस सितम को देख बोला फूल यों।
यह अरे बे पीर! तू ने क्या किया? ॥ १ ॥
क्या समझ सकता नहीं यह बात तू?
धूल में मेरी मिली चाहें सभी॥
आज तू ने छीन जो मुझ से लिया।
पा सकूँगा मैं न अब उसको कभी॥ २ ॥
हँस न पाया था कि रोने की पड़ी।
कुछ न देखा और आँखें बंद कीं॥
आह! तेरे ही किये सब पंखड़ी।
खिल न पाई थीं कि कुम्हलाने लगीं॥ ३ ॥

है समझता जीव मुझ में है नहीं ।
और दुख-सुख भी नहीं होता मुझे ॥
भूल है यह, पंडितों से पूछ ले ।
भेद इसका वे बता देंगे तुझे ॥ ४ ॥

क्या हरी निज पत्तियों में मैं तुझे ?
छबि दिखाता था न, या भाता न था ।
क्या वहीं से ही महक मेरी भली ।
तू सहारे वायु के पाता न था ॥ ५ ॥

किस लिये फिर यों सताया मैं गया ।
जी न बहलाना तुझे यों चाहिये ॥
इस तरह क्या चाहिये करना बदी ।
कोट-कुर्ते की सजावट के लिये ॥ ६ ॥

है भला किस काम का, पत्थर पड़े ।
दूसरों को पीस कर जो सुख मिले ॥
आग कल लगते अभी उस में लगे ।
और का दुख देख जो मुखड़ा खिले ॥ ७ ॥

ठूँठ हो डंठी खड़ी है रो रही ।
मैं कलपता हूँ कलेजा थाम कर ॥
कुछ घड़ी में पंखड़ी नुच जायगी ।
धूल पर मैं लोटता हूँगा बिखर ॥ ८ ॥

अब मिलेंगी वे न प्यारी पत्तियाँ ।
जो गले लग प्यार दिखलाती रहीं ॥
वे अनूठी डालियाँ फूलों भरी ।
गोद में अब ले खेलायेंगी नहीं ॥ ९ ॥

वे हमारे संग वाले फूल सब ।
पास बैठे जो कि जाते थे खिले ॥
अब हमें देंगे दिखाई भी नहीं ।
हम रहे जिनसे बहुत दिन तक हिले ॥ १० ॥

चूम जायेंगी न आ आ तितलियाँ ।
गीत भौंरे भी सुनायेंगे न गा ॥
कौन देखेगा हमारी ओर अब ।
चौगुनी चाहें भरी आँखें लगा ॥ ११ ॥

वह बड़ा सुन्दर सबेरे का समाँ ।
जब कि मैं जी खोल करके था खिला ॥
अब नहीं मैं देख पाऊँगा कभी ।
आह मैं किससे करूँ इसका गिला ॥ १२ ॥

कौन है दुख दूसरों का जानता ।
निज सुखों में सब सदा भूला रहा ॥
मर मिटे कोई बला से मर मिटे ।
कब न मानव रुचि-तरंगों में बहा ॥ १३ ॥

है जनम तेरा उसी कुल में हुआ।
है बड़प्पन का जिसे दावा बड़ा॥
पर हुआ क्या, आज तेरे हाथ से।
एक को योंही सभी खोना पड़ा॥१४॥

बीतती जो आज तुझ पर इस तरह।
तो समझ सकता पराई पीर तू॥
जो लगा होता तुझे, तो और को।
मार सकता था नहीं यों तीर तू॥१५॥

जो कि होना था हुआ, मैं इसलिये—
अब नहीं कुछ और कहना चाहता॥
पर तुझे यह बात बतलाये बिना—
है नहीं मन भी हमारा मानता॥१६॥

जो बिना मैं हूँ नहीं, जड़ मैं न हूँ।
दुख दरद से भी बचा हूँ मैं नहीं॥
तोड़ लेना इसलिये योंही मुझे।
है बहुत से पाप से बढ़ कर कहीं॥१७॥

दूर करने के लिये दुख और का।
लोक के हित में लगाने के लिये॥
फूल पत्ते तुम भले ही तोड़ लो।
देवताओं पर चढ़ाने के लिये॥१८॥

पर कभी यों ही उन्हें मत तोड़ना।

हैं बुरा यह और निठुराई निरी॥

किस लिये हो और पर ढाते विपत।

हो न सहते आँख की जब किरकिरी॥१९॥

क्यों मुझी पर इस तरह जी आ गया।

फूल फूले हैं यहाँ पर तो सभी॥

क्या कहें, किससे कहें कैसे कहें।

रूप गुण भी पीस देता है कभी॥२०॥

—❀—

जुगनू

चौपदे

लो पकड़ लड़को जुगनुओं को न तुम।

हाथ में पड़ हैं मुसीबत झेलते॥

खेलते तुम लोग अपना खेल हो।

वे बिचारे जान पर हैं खेलते॥ १॥

तंग लड़को जुगनुओं को मत करो।

ए तुम्हें अपना समझते काल हैं॥

सोच लो तुम हो किसी के लाल तो।

रात के गोदी भरे ए लाल हैं॥ २॥

खिला फूल

आज यह बात हम बतायेंगे।
हैं खिला फूल किस लिये भाता॥
किस लिये आँख में बसा है वह।
किस लिये मान है बहुत पाता॥ १॥

ऊबता है कभी न काँटों में।
देखते हैं सदा उसे हँस मुख॥
पास आये खुली महँक उसकी।
कौन पाता नहीं निराला सुख॥ २॥

रंग उसका सदा रहा प्यारा।
ढंग भी कब मिला न मन-भाया॥
फिर उसे क्यों न लोग चाहेंगे।
मान गुण से न हाथ कब आया॥ ४॥

कुछ बूंदियाँ

चौपदे

थी बरसना चाहती छाई घटा।
किन्तु तो भी थीं बहुत बूंदें अड़ीं॥
बेतरह उनमें मची थी खलबली।
देख यह कुछ बूंदियाँ यों कह पड़ीं॥ १॥

किस लिये बहनो ! बता दो हो अड़ी ।
तुम सबों ने क्यों गँवा साहस दिया ॥
क्या कहेंगे लोग जी में सोच लो ।
जो न धरती को बरस कर तर किया ॥ २ ॥

है यहाँ मिलती बड़ी सुथरी हवा ।
है यहाँ कुछ और ही नभ की छटा ॥
श्याम रंगत की बड़ी मनमोहनी ।
बादलों की है यहाँ बाँकी अटा ॥ ३ ॥

खूब चंचल दौड़ने वाली बड़ी ।
जो बहुत ही हम सबों से है हिली ॥
घूमती दिन रात हैं जिस पर चढ़ी ।
मन चली घोड़ी हवा की है मिली ॥ ४ ॥

साड़ियाँ देती पिन्हा हैं सतरँगी ।
सामने पड़ रँग बिरंगी रवि-किरन ॥
चित्त किस का मोह जाता है नहीं ।
देखकर जिनकी बड़ी न्यारी फबन ॥ ५ ॥

हैं यहाँ पर मिल रहे सुख नित नये ।
पर न तब भी आपदा सकती है टल ॥
हैं डरा देते गरज कर के जलद ।
कौंध कर बिजली बनाती है बिकल ॥ ६ ॥

फिर सहमना हो नहीं सकता भला।
जोहती है हम सबों का मुख धरा॥
पा हमें पौधे बड़े होंगे सुखी।
कितने ही सूखा बदन होगा हरा॥ ७॥
है वहाँ पर भी नहीं सुख की कमी।
फूल खिल कर गोद में लेंगे हमें॥
मोतियों की सी दमक दिखलायेंगे।
नोक पर तृण की हमारे कण थमे॥ ८॥
जो नहीं हम सब दिखायेंगी दया।
हो सकेगा किस तरह शीतल अचल॥
बढ़ सकेंगी किस तरह नदियाँ घटी।
सूखता सर किस तरह होगा सजल॥ ९॥
प्यास धरती की बुझेगी किस तरह।
कर सकेगा ऊसरों को कौन तर॥
जी सकेंगी ये बेचारी दूब क्यों।
चातकों की किस तरह होगी बसर॥ १०॥
है सदा से ही जगत की रीति यह।
काम एक से दूसरे का है चला॥
भूमि वालों की भलाई के लिये।
धूल में मिल जाँय तो भी है भला॥ ११॥

काम इतनी बात से ही हो गया।
भर भरा कर साथ सब बूँदें गिरीं॥
हो गई आनन्द-मय सारी धरा।
मोद की सब ओर डौंड़ी सी फिरी॥१२॥

फूल और काँटा

हैं जनम लेते जगह में एक ही।
एक ही पौधा उन्हें है पालता॥
रात में उन पर चमकता चाँद भी।
एक ही सी चाँदनी है डालता॥१॥

मेह उन पर है बरसता एक सा।
एक सी उन पर हवायें हैं बहीं॥
पर सदा ही यह दिखाता है हमें।
ढंग उनके एक से होते नहीं॥२॥

छेद कर काँटा किसी की उँगलियाँ।
फाड़ देता है किसी का वर बसन॥
प्यार-डूबी तितलियों का पर कतर।
भौंर का है बेध देता श्याम तन॥३॥

फूल लेकर तितलियों को गोद में ।
भौंर को अपना अनूठा रस पिला ॥
निज सुगंधों औ निराले रंग से ।
है सदा देता कली जी की खिला ॥ ४ ॥

हैं खटकता एक सब की आँख में ।
दूसरा है सोहता सुर-शीश पर ॥
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे ।
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर ॥ ५ ॥

चुगली

चौपदे

बुरा है, औ है हलकापन ।
छिछोरेपन का है बाना ।
खुला मैलापन है जी का ।
नीचपन है चुगली खाना ॥ १ ॥

अँधेरें को पा करके ही ।
खोलता पर है चिमगादड़ ।
समझ के अंधेपन में ही ।
बेलते हैं चुगले पापड़ ॥ २ ॥

दाँव के लग जाने पर ही ।

काम कर जाती है चुगली ।

नहीं तो उलटे दाँत तले ।

दाबनी पड़ती है उँगली ॥ ३ ॥

गिरा हम क्यों न आँख से दें ।

दूसरों को चुगली खाकर ।

पर चलेगी कब तक सोचो ।

नाव कागज की पानी पर ॥ ४ ॥

फँसा दे क्यों न जाल में ही ।

तुम्हारी चुगली का दाना ।

तुम्हें भी जान पड़ेगा तब ।

पड़ेगा जब मुँह की खाना ॥ ५ ॥

चुगलियाँ कर लथेड़ कर के ।

किसी को हम ने क्या पाया ।

लगा कर मरदाने धौलें ।

हमें जो नीचा दिखलाया ॥ ६ ॥

और की चुगली करने को ।

कुराहों में जो पाँव जमे ।

पछाड़ा हमने क्या उसको ।

उसी ने लिया पछाड़ हमें ॥ ७ ॥

पीठ पीछे जो मुँह खोले।
कौन उसका सा है ढोंगी।
चला कर छिप कर के चोटें।
सामने आँखें क्यों होंगी॥ ८॥
और की पत उतारने के।
काम में चुगली आती है।
मगर पत ऐसे लोगों की।
उतर पहलेही जाती है॥ ९॥
जब कि वे मन के रोगों से।
बने ही रहते हैं रोगी।
तब भला चुगले लोगों की।
क्यों न मिट्टी पलीद होगी॥१०॥

हलकापन

चौतुका

सुनो जीसे बातें मेरी।
न देखो बँटने पावे मन॥
बताये देता हूँ तुम को।
किसे कहते हैं हलकापन॥ १॥

तनिक सी हवा लगे से ही ।
डोल जाता है तिनका-तन ॥
इसलिये थोड़ी बातों में ।
बिगड़ पड़ना है हलकापन ॥ २ ॥

फूंक के लग जाने पर ही ।
चंग जाता है भूआ बन ॥
किसी के बात फेंकने पर ।
बहक जाना है हलकापन ॥ ३ ॥

मान मरजादा से भारी ।
भला कब हो सकता है धन ॥
किसी को दम-झांसा देकर ।
मूंड़ लेना है हलकापन ॥ ४ ॥

एक दो हलकी पेचक से ।
पतंगें ही जाती हैं तन ॥
चार पैसा हो जाने पर ।
तने फिरना है हलकापन ॥ ५ ॥

दूध के दूहे जाने पर ।
वह नहीं रह जाता है थन ॥
दूसरों से दुखड़ा कह कर ।
भरम खोना है हलकापन ॥ ६ ॥

थिर नहीं रह सकता यकदम ।
हिला ही करता है छन छन ॥
जीभ को पीपल का पत्ता ।
बना लेना है हलकापन ॥ ७ ॥

बिनौलों के कढ़ जाने पर ।
रहा रूई का वह न वजन ॥
भेद की या निज की बातें ।
बता देना है हलकापन ॥ ८ ॥

तौल कर देखो, क्यों होगा ।
अदब सा भारी ओछापन ॥
बड़े बूढ़ों से भिड़ जाना ।
बहस करना है हलकापन ॥ ९ ॥

नहीं मुँह में डाला जाता ।
गिर गया है मुँह से जो कन ॥
दे दिया गया किसी को जो ।
उसे रखना है हलकापन ॥१०॥

हँसी खेल के पुतले

सार

किलक किलक कर कानों को हैं प्यारी सुधा पिलाते ।
ललक ललक कर लोचन को हैं बार बार ललचाते ॥
गा गा मन माने गीतों को मनको हैं हर लेते ।
बजा पिपिहरी पत्तों बिरची हैं मोदित कर देते ॥ १ ॥
नाच नाच कर मंजु मोर सा ठुमुक ठुमुक हैं चलते ।
उमग उमग कर भर उमंग में हैं कूदते उछलते ॥
गूंज रहे हैं भँवरों जैसा भर भाँवरें निराली ।
कूक रहे हैं कोयल का सा बजा रहे हैं ताली ॥ २ ॥
देख देख तितली की रंगत हैं अपने तन रँगते ।
चिड़ियों के चहचहे सुने, हैं आप चहकने लगते ॥
तोड़ तोड़ मीठे मीठे फल हैं खाते सुख पाते ।
फूलों के रच रुचिर खिलौने फूले नहीं समाते ॥ ३ ॥
नचा नचा कर लट्टू उस पर हैं लट्टू हो जाते ।
फिरकी के समीप फिर फिर हैं फिरकी से दिखलाते ।
बोल बोल कर बचन रसीले बड़े अनूठे तुतले ।
हँस हँस कर के खेल रहे हैं हँसी खेल के पुतले ॥ ॥४ ॥